ॐ
श्री केशवानंद तीर्थ
मुमुक्षु भवन अस्सी
वाराणसी

श्रीः ।

अथ

श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचिता

अष्टावक्रगीता ।

सान्वयभाषाटीकासमेता ।

जिसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण-मुंबई.

प्रस्तावना.

परमतत्त्वका ज्ञान शास्त्र और ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुके उपदे-
शके विना निर्भ्रान्त [illegible] नहीं होता है. इसवास्ते परमोपका-
री महर्षियोंने अध्यात्मविद्योपदेशके अर्थ अनेक प्रका-
रके वेदान्तग्रन्थ निर्माण करके परमतत्त्वको प्रगट किया है.
उन ऋषियोंमें अग्रगण्य श्रीअष्टावक्रमहर्षिजीने राजा जन-
कजीके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया वह " अष्टाव-
क्रगीता " इस नामसे ग्रंथरूप होकर प्रसिद्ध हुआ.

यह " अष्टावक्रगीता " ग्रन्थ ब्रह्मविद्यामें अतिमान्य
है, इसका लाभ सर्व लोकोंको होनेके वास्ते हमने इसकी
सरल सुबोध अन्वय भाषाटीका बनवाकर निज " लक्ष्मी-
वेङ्कटेश्वर " छापखानेमें छापकर प्रसिद्ध किया है.

सर्व सज्जन ब्रह्मविद्याभिलाषियोंसे प्रार्थना है कि, इस
ग्रंथको संग्रह करके इसमें कहे हुए ब्रह्मोपदेशको जानकर
इस जन्मके तरनेका उपाय निश्चित करके इस जन्मका
सार्थक करेंगे.

भवदीय कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" प्रेस, कल्याण–मुंबई.

॥ श्रीः ॥

अथ

अष्टावक्रगीता।

ान्वय-भाषाटीकासहिता।
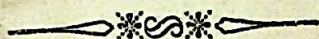
अथ प्रथमं प्रकरणम् १.

ानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
च कथं प्राप्तमेतद्ब्रूहि मम प्रभो॥

! (पुरुषः) ज्ञानम् कथम् अवाप्नोति। (पुंसः) भविष्यति। (पुंसः) वैराग्यम् च कथम् प्राप्तम् मम ब्रूहि॥ १॥

समय मिथिलाधिपति राजा जनकके मनमें के प्रभावसे इस प्रकार जिज्ञासा उत्पन्न हुई असार संसाररूपकी बंधनसे किस प्रकार ा और तदनंतर उन्होंने ऐसाभी विचार के किसी ब्रह्मज्ञानी गुरुके समीप जाना चाहिये, ातरमें उनको ब्रह्मज्ञानके मानो सद्गुरु प्राप्त

दयालु श्रीअष्टावक्रजी मिले। इन
देखकर राजा जनकके मनमें
कि, यह ब्राह्मण अत्यंतही कुरूप है
चित्तका वृत्तांत जाननेवाले अष्टावक्र
काभी विचार दिव्यदृष्टिके द्वारा जानक
बोले कि, हे राजन्! देहदृष्टिको छोड
दृष्टि करोगे तो यह देह टेढा है परंतु
आत्मा टेढा नहीं है, जिस प्रकार नदी
परंतु उसका जल टेढा नहीं होता है,
(गन्ना) टेढा होता है परंतु उसका
तिस प्रकार यद्यपि पांचभौतिक य
परंतु अंतर्यामी आत्मा टेढा नहीं है
असंग, निर्विकार, व्यापक, ज्ञानघन
रूप, अखंड, अच्छेद्य, अभेद्य, नि
और मुक्तस्वभाव है इस कारण
देहदृष्टिको त्यागकर आत्मदृष्टि करो

इस ... के वचन सुननेसे राजा
मोह जनकका ... हो गया और राजा जन-
... के मेरे सब मनोरथ सिद्ध
... अब इनकोही गुरु करूंगा । क्योंकि यह
...ह्मविद्याके समुद्ररूप हैं, जीवन्मुक्त हैं, अब
...क ज्ञानी मुझे कौन मिलेगा ? अब तो
...दीक्षा लेकर इनकीही शरण लेना योग्य
...कार विचारकर राजा जनक अष्टावक्रजीसे
... बोले कि, हे महात्मन् ! मैं संसारबंधनसे
...निमित्त आपकी शरण लेनेकी इच्छा करता
...क्रजीनेभी राजा जनकको अधिकारी सम-
...ना शिष्य कर लिया, तब राजा जनक
...त्तके संदेहोंको दूर करनेके निमित्त और
...के श्रवण करनेकी इच्छा करके अष्टावक्र-
...ने लगे । अष्टावक्रजीसे राजा जनक प्रश्न

कि—हे प्रभो ! अविद्याकरके मोहित नाना

साधनचतुष्टयपूर्वक ब्रह्मतत्त्वका
कि साधनचतुष्टयके विना कोटि
ब्रह्मविद्या फलीभूत नहीं होती है
को प्रथम साधनचतुष्टयका उपदेश
और साधनचतुष्टयके अनंतरही
की इच्छा करनी चाहिये, इस
र अष्टावक्रजी बोले कि–हे तात !
अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानंद-
न होवे तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस
चों विषयोंको त्याग देवे । ये पांच
ा, नेत्र, जिह्वा और नासिका इन
के हैं, ये संपूर्ण जीवके बंधन हैं, इनसे
उत्पन्न होता है और मरता है तब
ा है, जिस प्रकार विष भक्षण करने-
ख होता है, उसी प्रकार शब्दादिवि-
ली पुरुष दुःखी होता है । अर्थात्

शब्दादि विषय महा अनर्थका मूल है उन विषयोंको
तू त्याग दे । अभिप्राय यह है कि देह आदिके विषयमें मैं हूं, मेरा है इत्यादि अध्यास मत कर इस
प्रकार बाह्य इंद्रियोंको दमन करनेका उपदेश किया,
जो पुरुष इस प्रकार करता है उसको 'दम' नाम
वाले प्रथम साधनकी प्राप्ति होती है और जो अंतः-
करणको वशमें कर लेता है उसको 'शम' नामवाली
दूसरी साधनसंपत्तिकी प्राप्ति होती है। जिस
अपने वशमें हो जाता है, उसका एक
हो जाता है, उसका नाम वेदांतशास्त्रमें निर्विकल्पक
समाधि कहा है, उस निर्विकल्पक समाधि
स्थितिके अर्थ क्षमा (सब सह लेना) आर्जव
(अविद्यारूप दोषसे निवृत्ति रखना), दया (निना
कारणही पराया दुःख दूर करनेकी इच्छा), संतोष
(सदा संतुष्ट रहना) , सत्य (त्रिकालमें एकरूप-
पता) इन पांच सात्त्विक गुणोंका सेवन करे फिर

पुरुष अमृततुल्य औषधि सेवन करे
औषधिके प्रभावसे उसके संपूर्ण रोग
हो जाते हैं, उसी प्रकार जो पुरुष अमृततुल्य
को सेवन करता है, उसके जन्ममृ-
दूर हो जाते हैं अर्थात् इस संसारके
पुरुषको मुक्तिकी इच्छा होय वह विष-
दूर देवे, विषयोंका त्याग करे विना
नहीं होती है, मुक्ति अनेक दुःखोंकी
और परमानंदकी देनेवाली है इस
मुनिने प्रथम शिष्यको विषयोंको
देश दिया ॥ २ ॥

लं नाग्निर्नवायुर्द्यौर्नवाभवान् ।
गमात्मानंचिद्रूपंविद्धिमुक्तये ३

ष्य !) भवान् पृथ्वी न । जलम् न । अग्निः न ।
एषाम् साक्षिणम् चिद्रूपम् आत्मानम् मुक्तये

अब मुनि साधनचतुष्टयसंपन्न [illegible] मुक्ति[illegible]
उपदेश करते हैं तहां शिष्य शंका करता है कि-
हे गुरो ! पंच भूतका शरीरही आत्मा है और
पंचभूतोंकेही पांच विषय हैं, सो उन पंचभूतोंका
जो स्वभाव है उसका कदापि त्याग नहीं हो
सकता; क्योंकि पृथ्वीसे गंधका वा गंधसे पृथ्वी-
का कदापि वियोग नहीं हो सकता [illegible]
एकरूप होकर रहते हैं, इसी प्रकार [illegible]
अग्नि और रूप, वायु और स्पर्श, श[illegible]
काश है, अर्थात् शब्दादि पांच वि[illegible]
तो तब हो सकता है जब पंच भूतोंका त्याग होता
है और यदि पंच भूतका त्याग होय तो शरीरपात
हो जावेगा फिर उपदेश ग्रहण करनेवाला कौन रहेगा ?
तथा मुक्तिसुखको कौन भोगेगा ? अर्थात् विषयोंका
त्याग तो कदापि नहीं हो सकता इस शंकाको निवा-
रण करनेको अर्थ अष्टावक्रजी उत्तर देते हैं

हे शिष्य ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश
तथा इनके धर्म जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और
गंध सो तू नहीं है पांचभौतिक शरीरके विषयमें तू
अज्ञानसे अहम्भाव (मैं हूं, मेरा है इत्यादि) मानता
है इनका त्याग कर अर्थात् इस शरीरके अभिमानका
त्याग करके और विषयोंको अनात्मधर्म जानकर
अब शिष्य इस वियषमें फिर शंका
हे गुरो ! मैं गौर वर्ण हूं, कृष्णवर्ण हूं,
र हूं, कुरूप हूं, काणा हूं, नीच हूं इस
प्रकारकी प्रतीति इस पांचभौतिक शरीरमें अनादि
पुरुषोंको हो जाती है, फिर तुमने जो
कहा कि तू देह नहीं है सो इसमें क्या युक्ति है,
बोले कि हे शिष्य ! अविवेकी पुरुषको
प्रतीति होती है, विवेकदृष्टिसे तू देह इंद्रि-
और देह इंद्रियादिसे पृथक् है । जिस
देखनेवाला पुरुष घटसे पृथक् होता है,

उसी प्रकार आत्माकोभी सर्व दोषरहित
साक्षी जान । इस विषयमें न्यायशास्त्रवा
है कि, साक्षिपना तो बुद्धिमें रहता है,
बुद्धिही आत्मा हो जायगी, इसका समा
कि बुद्धि तो जड है और आत्मा चेतन
कारण जड जो बुद्धि सो आत्मा नहीं
तो आत्माको चैतन्यस्वरूप जान तहां
करता है कि हे गुरो ! चैतन्यरूप आ
क्या फल होता है सो कहिये ? तिसके
वक्रजी कहते हैं कि, साक्षी और चै
तिसको जाननेसे पुरुष जीवन्मुक्तपदको
यही आत्मज्ञानका फल है, मुक्तिका
सीके विचारमें नहीं आया है, षट्शास्त्र
बुद्धिके अनुसार मुक्तिके स्वरूपकी कल
न्यायशास्त्रवाले इस प्रकार कहते हैं कि
जो अत्यंत नाश है वही मुक्ति है, औ

कर्मतावलंबी मीमांसकोंका यह कथन है कि समस्त
दुःखोंका उत्पन्न होनेसे पहिले जो सुख है वही मुक्ति
, बौधमतवालोंका यह कथन है कि, देहका नाश
नाही मुक्ति है, इस प्रकार भिन्न २ कल्पना करते
, परंतु यथार्थ बोध नहीं होता है, । किंतु वेदांतशा-
के अनुसार आत्मज्ञानही मुक्ति है इस कारण अष्टा-
कमुनि शिष्यको उपदेश करते हैं ॥ ३ ॥

दि देहं पृथक्कृत्याचितिविश्राम्य तिष्ठसि ।
अधुनैव सुखीशांतो बंधमुक्तोभविष्यासि ॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) यदि देहम् पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य
तिष्ठसि (तर्हि) अधुना एव सुखी शान्तः बन्धमुक्तः
भविष्यासि ॥ ४ ॥

हे शिष्य ! यदि तू देह तथा आत्माके विवेक
के अलग जानेगा और आत्माके विषयमें विश्राम
के चित्तको एकाग्र करेगा तो तू इस वर्तमा-
मनुष्यदेहके विषयमें सुख तथा शान्तिको

प्राप्त होगा अर्थात् बंधमुक्त कहिये कर्तृत्व (कर्ता-पना) भोक्तृत्व (भोक्तापना) आदि अनेक अनर्थोंसे छूट जावेगा ॥ ४ ॥

न त्वंविप्रादिको वर्णो नाश्रमीनाक्षगोचरः।
असंगोसिनिराकारोविश्वसाक्षीसुखीभव॥

अन्वयः—त्वम् विप्रादिकः वर्णः न आश्रमी न अक्षगोचरः न (किन्तु, त्वम्) असंगः निराकारः विश्वसाक्षी असि (अन्तः कर्मासक्तिम् विहाय चिति विश्राम्य) सुखी भव ॥ ५ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि, हे गुरो ! मैं तो वर्णाश्रमके धर्ममें हूं इस कारण मुझे वर्णाश्रमके कर्मका करना योग्य है, अर्थात् वर्णाश्रमके कर्म करनेसे आत्माके विषयमें विश्राम करके मुक्ति किस प्रकार होगी ? तब तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, तू ब्राह्मण आदि नहीं है, तू ब्रह्मचारी आदि किसी आश्रममें नहीं है। तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, मैं ब्राह्मण हूं, मैं संन्यासी हूं इत्यादि प्रत्यक्ष है, इस

कारण आत्माही वर्णाश्रमी है । तहां गुरु समाधान करते हैं कि,आत्माका इंद्रिय तथा अंतःकरण करके प्रत्यक्ष नहीं होता है और जिसका प्रत्यक्ष होता है वह देह है, तहां शिष्य फिर प्रश्न करता है कि मैं क्या वस्तु हूँ ? तहां गुरु समाधान करते हैं कि, तू असंग अर्थात् देहादिक उपाधि यथा आकाररहित्त विश्वका साक्षी आत्मस्वरूप है; अर्थात् तुझमें वर्णाश्रमपना नहीं है, इस कारण कर्मोंके विषयमें आसक्ति न करके चैतन्यरूप आत्माके विषयमें विश्राम करके परमानंदको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

धर्माधर्मौ सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो । न कर्तासि न भोक्तासि मुक्त एवासि सर्वदा ॥ ६ ॥

अन्वयः-हे विभो ! धर्माधर्मौ सुखम् दुःखम् मानसानि ते न (त्वम्) कर्ता न असि भोक्ता न असि (किन्तु) सर्वदा मुक्त एव असि ॥ ६ ॥

तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, वेदोक्त वर्णाश्रमके कर्मोंको त्यागकर आत्माके विषें विश्राम करनेमेंभी तौ अधर्मरूप प्रत्यवाय होता है, तिसका गुरु समाधान करते हैं कि; हे शिष्य ! धर्म, अधर्म, सुख और दुःख यह तो मनका; संकल्प है. तिस कारण तिन धर्माधर्मादिके साथ तेरा त्रिकालमेंभी संबंध नहीं है । तू कर्ता नहीं है, तू भोक्ता नहीं है; क्योंकि विहित अथवा निषिद्ध कर्म करता है, वही सुख दुःखका भोक्ता है । सो तुझमें नहीं है क्योंकि तू तो शुद्धस्वरूप है; और सर्वदा कालमुक्त है । अज्ञान करके भासनेवाले सुख दुःख आत्माके विषें आश्रय करकेही निवृत्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

एको द्रष्टासि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसिसर्वदा।
अयमेव हिते बन्धो द्रष्टारं पश्यसीतरम्॥

अन्वयः-(हे शिष्य ! त्वम्) सर्वस्य द्रष्टा एकः असि सर्वदा मुक्तप्रायः असि हि ते अयम् एव बन्धः (यम्) द्रष्टारम् इतरम् पश्यसि ॥ ७ ॥

तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, शुद्ध एक, नित्य मुक्त ऐसा जो आत्मा है तिसका बंधन किस निमित्तसे होता है कि, जिस बंधनके छुटानेके अर्थ बडे २ योगी पुरुष यत्न करते हैं ? तहां गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य ! तू अद्वितीय सर्वसाक्षी सर्वदा मुक्त है, तू जो द्रष्टाको द्रष्टा न जानकर अन्य जानता है यही बंधन है। सर्व प्राणियोंमें विद्यमान आत्मा एकही है और अभिमानी जीवके जन्मजन्मांतर ग्रहण करनेपरभी आत्मा सर्वदा मुक्त है। तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, फिर संसारबंध क्या वस्तु है ? तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, यह प्रत्यक्ष देहाभिमानही संसारबंधन है अर्थात् यह कार्य करता हूं, यह भोग करता हूं इत्यादि ज्ञानही संसारबंधन है, वास्तवमें आत्मा निर्लेप है, तथापि देह और मनके भोगको आत्माका भोग मानकर बद्धसा हो जाता है ॥ ७ ॥

अहं कर्त्तेत्यहंमानमहाकृष्णाहिदंशितः ।
नाहंकर्त्तेति विश्वासामृतं पीत्वासुखी भव॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) अहम् कर्ता इति अहंमानमहाकृष्णा-हिदंशितः (त्वम्) अहं कर्ता न इति विश्वासामृतम् पीत्वा सुखी भव ॥ ८ ॥

यहांतक बंधहेतुका वर्णन किया अब अनर्थके हेतुका वर्णन करते हुए अनर्थकी निवृत्ति और पर-मानंदके उपायका वर्णन करते हैं । 'मैं कर्ता हूं' इस प्रकार अहंकाररूप महाकाल सर्पसे तू काटा हुआ है इस कारण मैं कर्ता नहीं हूं इस प्रकार विश्वासरूप अमृत पीकर सुखी हो । आत्माभिमानरूप सर्पके विषसे ज्ञानरहित और जर्जरीभूत हुआ है, यह बंधन जितने दिनोंतक रहेगा तबतक किसी प्रकार सुखकी प्राप्ति नहीं होगी; जिस दिन यह जानेगा कि, मैं देहादि कोई वस्तु नहीं हूं, मैं निर्लिप्त हूं, उस दिन किसी प्रकारका मोह स्पर्श नहीं कर सकेगा ॥ ८ ॥

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकःसुखीभव॥

अन्वयः-(हे शिष्य!) अहम् विशुद्धबोधः एकः (अस्मि) इति निश्चयवह्निना अज्ञानगहनम् प्रज्वाल्य वीतशोकः (सन्) सुखी भव ॥ ९ ॥

तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृत पान किसी प्रकार करूं ? तहां गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य ! मैं एक हूं अर्थात् मेरे विषें सजाति विजातिका भेद नहीं है और स्वगतभेदभी नहीं है, केवल एक विशुद्धबोध और स्वप्रकाशरूप हूं. निश्चयरूपी अग्निसे अज्ञानरूपी वनका भस्मकरके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होनेपर शोकरहित होकर परमानंदको प्राप्त हो ॥ ९ ॥

यत्रविश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनंदपरमानंदःस बोधस्त्वं सुखंचर॥

अन्वयः—यत्र इदम् विश्वम् रज्जुसर्पवत् कल्पितम् भाति सः आनन्दपरमानन्दः बोधः त्वम् सुखम् चर ॥ १० ॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञानसे अज्ञानरूपी वनके भस्म होनेपरभी सत्यरूप संसारकी ज्ञानसे निवृत्ति न होनेके कारण शोकरहित किस प्रकार होऊंगा ? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य ! जिस प्रकार रज्जुके विषें सर्पकी प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होनेसे निवृत्ति हो जाती है, तिस प्रकार ब्रह्मके विषें जगत्की प्रतीति अज्ञानकल्पित है ज्ञान होनेसे नष्ट हो जाती है । तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर । जिस स्वप्नमें किसी पुरुषको सिंह मारता है तो वह बडा दुःखी होता है परंतु निद्राके दूर होनेपर उस कल्पित दुःखका जिस प्रकार नाश हो जाता है तिस प्रकार तू ज्ञानसे अज्ञानका नाश करके सुखी हो । तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, हे गुरो ! दुःखरूप

जगत् अज्ञानसे प्रतीत होता है और ज्ञानसे उसका नाश हो जाता है परंतु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जब दुःखरूपी संसारके नाश होनेपर आत्मा स्वभावसेही आनंदस्वरूप हो जाता है, मनुष्यलोकसे तथा देवलोकसे आत्माका आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है श्रुतिमेंभी कहा है "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रमुपजीवान्ति" इति ॥ १० ॥

मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि। किंवदंतीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

अन्वयः—इह मुक्ताभिमानी मुक्तः अपि बद्धाभिमानी बद्धः हि या मतिः सा गतिः भवेत् इयम् किंवदन्ती सत्या ॥ ११ ॥

शिष्य शंका करता है कि, यदि संपूर्ण संसार रज्जुके विषयमें सर्पकी समान कल्पित है, वास्तवमें आत्मा परमानंदस्वरूप है तो बंध मोक्ष किस

प्रकार होता है ? तहां गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य ! जिस पुरुषको गुरुकी कृपासे यह निश्चय हो जाता है कि, मैं मुक्तरूप हूं वही मुक्त है और जिसके ऊपर सद्गुरुकी कृपा नहीं होती है और वह यह जानता है कि, मैं अल्पज्ञ जीव और संसारबंधनमें बंधा हुआ हूं वही बद्ध है, क्योंकि बंध और मोक्ष अभिमानसेही उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरणसमयमें जैसा अभिमान होता है वैसीही गति होती है यह बात श्रुति, स्मृति, पुराण और ज्ञानी पुरुष प्रमाण मानते हैं कि, "मरणे या मतिः" सोई गीतामेंभी कहा है कि; "यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् । तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥" इसका अभिप्राय यह है कि; श्रीकृष्णजी उपदेश करते हैं कि; हे अर्जुन ! अन्तसमयमें जिस २ भावको स्मरण करता हुआ पुरुष शरीरको त्यागता है तैसी २ भावनासे तिस २ गतिकोही प्राप्त होता है । श्रुति-

मेंभी कहा है कि " तं विद्याकर्मणी समारभेते पूर्वप्रज्ञा च." इसकाभी यही अभिप्राय है और बंध तथा मोक्ष अभिमानसे होते हैं वास्तवमें नहीं. यह वार्ता पहले कह आये हैं तौभी दूसरी बार शिष्यको बोध होनेके अर्थ कहा है इस कारण कोई दोष नहीं है क्योंकि आत्मज्ञान अत्यंत कठिन है ॥ ११ ॥

आत्मासाक्षीविभुःपूर्णएकोमुक्तश्चिद-क्रियः । असंगोनिःस्पृहःशांतोभ्रमा-त्संसारवानिव ॥ १२ ॥

अन्वयः—साक्षी विभुः पूर्णः एकः मुक्तः चित् अक्रियः असङ्गः निःस्पृहः शान्त आत्मा भ्रमात् संसारवान् इव (भाति) ॥ १२ ॥

जीवात्माके बंध और मोक्ष पारमार्थिक हैं इस तार्किककी शंकाको दूर करनेके निमित्त कहते हैं कि अज्ञानसे देहको आत्मा माना है तिस कारण वह संसारी प्रतीत होता है परंतु वास्तवमें आत्मा संसारी नहीं है, क्योंकि आत्मा तो साक्षी है और अहंकारादि

अंतःकरणके धर्मको जाननेवाला है और विभु अर्थात् नाना प्रकारका संसार जिससे उत्पन्न हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है, संपूर्ण व्यापक है एक अर्थात् स्वगता- दिक तीन भेदोंसे रहित है मुक्त अर्थात् मायाका कार्य जो संसार तिसके बंधनसे रहित, चैतन्यरूप, अक्रिय, असंग, निस्पृह अर्थात् विषयकी इच्छासे रहित है और शान्त अर्थात् प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित है इस कारण वास्तवमें आत्मा संसारी नहीं है ॥१२॥

कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावय ।
अभासोहंभ्रमंमुक्त्वाभावंबाह्यमथांतरम् ॥

अन्वयः--अभासः अहम् (इति) भ्रमम् अथ बाह्यम् अन्तरम् भावं मुक्त्वा आत्मानम् कुटस्थम् बोधम् अद्वैतम् परिभावय ॥ १३ ॥

मैं देहरूप हूं, स्त्री पुत्रादिक मेरे हैं, मैं सुखी हूं, दुःखी हूं, यह अनादि कालका अज्ञान एक बार आत्मज्ञानके उपदेशसे निवृत्त नहीं हो सकता है । व्यासजीनेभी कहा है " आवृत्तिरसकृदुपदेशात् "

"श्रोतव्यमन्तव्य०" इत्यादि श्रुतिके विषयमें वारंवार उपदेश किया है, इस कारण श्रवण मननादि वारंवार करने चाहिये, इस प्रमाणके अनुसार अष्टावक्रमुनि कुत्सित वासनाओंका त्याग करते हुए वारंवार अद्वैत भावनाका उपदेश करते हैं कि मैं अहंकार नहीं हूं, मैं देह नहीं हूं, स्त्रीपुत्रादिक मेरे नहीं हैं, मैं सुखी नहीं हूं, दुःखी नहीं हूं, मूढ नहीं हूं इन बाह्य ओर अंतरकी भावनाओंका त्याग करके कूटस्थ अर्थात् निर्विकार बोधरूप अद्वैत आत्मस्वरूपका विचार कर ॥ १३ ॥

देहाभिमानपाशेन चिरंबद्धोऽसि पुत्रक । बोधोऽहंज्ञानखड्गेन तन्निः- कृत्य सुखी भव ॥ १४ ॥

अन्वयः-हे पुत्रक ! देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि (अतः) अहम् बोधः (इति) ज्ञानखड्गेन तम् निःकृत्य सुखी भव ॥ १४ ॥

अनादि कालका यह देहाभिमान एक बार उप-देश करनेसे निवृत्त नहीं होता है इस कारण गुरु उप-देश करते हैं कि, हे शिष्य ! अनादिकालसे इस समयतक देहाभिमानरूपी फाँसीसे तू दृढ बंधा हुआ है, अनेक जन्मोंमेंभी उस बंधनके काटनेको तू समर्थ नहीं होगा इस कारण, शुद्ध विचार वारंवार करके " मैं बोधरूप अखंड परिपूर्ण आत्मारूप हूं " इस ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लेकर उस फाँसीको काटकर सुखी हो ॥ १४ ॥

निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरंजनः । अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) त्वम् (वस्तुतः) स्वप्रकाशः निरंजनः निःसंगः निष्क्रियः असि (तथापि) हि ते बन्धः अयम् एव (यत्) समाधिम् अनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

[illegible] चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप समाधिही

बंधनकी निवृत्तिका हेतु है इस पातंजलमतका खंडन करते हैं कि, पातंजलयोगशास्त्रमें वर्णन किया है कि, जिसके अंतःकरणकी वृत्ति विरामको प्राप्त हो जाती है उसका मोक्ष होता है सो यह बात कल्पनामात्रही है अर्थात् तू अंतःकरणकी वृत्तिको जीतकर सविकल्पक हठसमाधि मत कर क्योंकि तू निःसंग क्रियारहित स्वप्रकाश और निर्मल है इस कारण सविकल्प हठसमाधिका अनुष्ठानभी तेरा बंधन है आत्मा सदा शुद्ध मुक्त है तिस कारण भ्रांतियुक्त जीवके चित्तको स्थिर करनेके निमित्त समाधिका अनुष्ठान करनेसे आत्माकी हानि वृद्धि कुछ नहीं होती है जिसको सिद्धि लाभ अर्थात् आत्मज्ञान हो जाता है उसको अन्य समाधिके अनुष्ठानसे क्या प्रयोजन है? इस कारणही राजा जनकके प्रति अष्टावक्रजी वर्णन करते हैं तू जो समाधिका अनुष्ठान

करता है यही तेरा बंधन है, परंतु आत्मज्ञानविहीन पुरुषको ज्ञानप्राप्तिके निमित्त समाधिका अनुष्ठान करना आवश्यक है ॥ १५ ॥

त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः। शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मा-गमः क्षुद्रचित्तताम् ॥ १६ ॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) इदम् विश्वम् त्वया व्याप्तम् त्वयि प्रोतम् यथार्थतः शुद्धबुद्धस्वरूपः त्वम् क्षुद्रचित्तताम् मा गमः ॥ १६ ॥

अब शिष्यकी विपरीत बुद्धिको निवारण करनेके निमित्त गुरु उपदेश करते हैं कि, हे शिष्य ! जिस प्रकार सुवर्णके कटक कुंडल आदि सुवर्णसे व्याप्त होते हैं इसी प्रकार यह दृश्यमान संसार तुझसे व्याप्त है और जिस प्रकार मृत्तिकाके विषयमें घट शराव आदि किया हुआ होता है तिसी प्रकार यह संपूर्ण संसार तेरे विषयमें प्रोत है, हे शिष्य ! यथार्थ विचार करके तू

सर्व प्रपंचरहित है तथा शुद्ध बुद्ध चिद्रूप है, तू ।
त्तकी वृत्तिको विपरीत मत कर ॥ १६ ॥

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीत-
लाशयः । अगाधबुद्धिरक्षुब्धोभव-
चिन्मात्रवासनः ॥ १७ ॥

अन्वयः–(हे शिष्य ! त्वम्) निरपेक्षः निर्विकारः निर्भरः शीतला-
शयः अगाधबुद्धिः अक्षुब्धः चिन्मात्रवासनो भव ॥ १७॥

इस देहके विषयमें छः ऊर्मी तथा छः भावविकार
प्रतीत होते हैं सो तू नहीं है किन्तु उनसे भिन्न और
निरपेक्ष अर्थात् इच्छारहित है, तहां शिष्य आशंका
करता है कि, हे गुरो ! छः ऊर्मी और छः भावावि-
कारोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करो तहां गुरु वर्णन
करते हैं कि हे शिष्य ! क्षुधा, पिपासा (भूंख प्यास)
ये दो प्राणकी ऊर्मी अर्थात् धर्म हैं और तिसी प्रकार
शोक तथा मोह ये दो मनकी ऊर्मी हैं. तिसी प्रकार
जन्म और मरण ये दो देहकी ऊर्मी हैं, ये जो

हीं हैं जो तू नहीं है अब छः भावविकारोंको वण कर " जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, पक्षीयते, विनश्यति " ये छः भाव स्थूलदेहके विषें होते हैं सो तू नहीं है तू तो इनका साक्षी अर्थात् जाननेवाला है, तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, हे गुरो! मैं कौन और क्या हूँ सो कृपा करके कहिये तहां गुरु कहते हैं कि, हे शिष्य ! तू निर्भर अर्थात् सच्चिदानंद घनरूप है शीतल अर्थात् सुखरूप है, तू अगाधबुद्धि अर्थात् जिसका कोई पार न पासके ऐसा है और अक्षुब्ध कहिये क्षोभरहित है इस कारण तू क्रियाका त्याग कर चैतन्यरूप हो ॥ १७ ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसम्भवः ॥ १८ ॥

अन्वयः–(हे शिष्य !) साकारम् अनृतम् निराकारं तु निश्चलम् विद्धि एतत्तत्त्वोपदेशेन पुनर्भवसम्भवः न ॥ १८ ॥

श्रीगुरु अष्टावक्रमुनिने प्रथम एक श्लोकमें

मोक्षका विषय दिखाया था कि, " विषयान् विषवत्यज " और " सत्यं पीयूषवद्भज " इस प्रकार प्रथम श्लोकमें सब उपदेश दिया । परंतु विषयोंको विषतुल्य होनेमें और सत्यरूप आत्माके अमृततुल्य होनेमें कोई हेतु वर्णन नहीं किया सो १७ वें श्लोकके विषयमें इसका वर्णन करके आत्माको सत्य और जगत्को अध्यस्त वर्णन किया है. दर्पणके विषें दीखता हुआ प्रतिबिम्ब अध्यस्त है, यह देखने मात्र होता है सत्य नहीं क्योंकि दर्पणके देखनेसे जो पुरुष होता है उसका शुद्ध प्रतिबिंब दीखता है और दर्पणके हटानेसे यह प्रतिबिंब पुरुषमें लीन हो जाता है इस कारण आत्मा सत्य है और उसका जो जगत् वह बुद्धियोगसे भासता है तिस जगत्को विषतुल्य जान और आत्माको सत्य जाने तब मोक्षरूप पुरुषार्थ सिद्ध होगा इस कारण अब तीन श्लोकोंसे जगत्का मिथ्यात्व

वर्णन करते हैं कि—हे शिष्य ! साकार जो देह तिस-को आदि ले संपूर्ण पदार्थ मिथ्या कल्पित हैं और निराकार जो आत्मतत्त्व सो निश्चल है और त्रिकालमें सत्य है, श्रुतिमेंभी कहा है " नित्यं विज्ञानमानंदं ब्रह्म " इस कारण चिन्मात्ररूप तत्त्वके उपदेशसे आत्माके विषें विश्राम करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता है अर्थात् मोक्ष हो जाता है ॥ १८ ॥

यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तःपरितस्तु सः ।
तथैवास्मिन्शरीरेन्तः परितः परमेश्वरः ॥

अन्वयः—यथा एव आदर्शमध्यस्थे रूपे अन्तः परितः तु सः (व्याप्य वर्त्तते) तथा एव अस्मिन् शरीरे अन्तः परितः परमेश्वर (व्याप्य स्थितः) ॥ १९ ॥

अब गुरु अष्टावक्रजी वर्णाश्रमधर्मवाला जो स्थूल शरीर है तिससे और पुण्यअपुण्यधर्मवाला जो लिङ्गशरीर है तिससे विलक्षणपरिपूर्ण चैतन्यस्वरूपका दृष्टांतसहित उपदेश करते हैं कि, हे शिष्य ! वर्णा-श्रमधर्मरूप स्थूलशरीर तथा पुण्यपापरूपी लिंग-

शरीर यह दोनों जड हैं सो आत्मा नहीं हो सकते हैं क्योंकि आत्मा तो व्यापक है इस विषयमें दृष्टांत दिखाते हैं कि, जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिंब पडता है, उस दर्पणके भीतर और बाहर एक पुरुष व्यापक होता है। तिसी प्रकार इस स्थूल शरीरके विषें एकही आत्मा व्याप रहा है सो कहाभी है "यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्" अर्थात् जिस परमात्माके विषें यह विश्व रज्जुके विषें कल्पित सर्पकी समान प्रतीत होता है, वास्तवमें मिथ्या है ॥१९॥

एकं सर्वगतं व्योम बहिरंतर्यथा घटे ।
नित्यंनिरंतरंब्रह्म सर्वभूतगणे तथा॥२०॥

अन्वयः--यथा सर्वगतम् एकम् व्योम घटे बहिः अंतः वर्त्तते तथा नित्यम् ब्रह्म सर्वभूतगणे निरन्तरम् वर्त्तते ॥ २० ॥

ऊपरके श्लोकमें कांचका दृष्टांत दिया है तिसमें संशय होता है कि, कांचमें देह पूर्णरीतिसे व्याप्त नहीं होता है तिसी प्रकार देहमें कांच पूर्ण रीतिसे व्याप्त

नहीं होती है कारण दूसरा दृष्टांत कहते हैं कि, जिस प्रकार आकाश है, वह घटादि संपूर्ण पदार्थोंमें व्याप रहा है, तिसी प्रकार अखंड अविनाशी ब्रह्म है वह संपूर्ण प्राणियोंके विषें अंतरमें तथा बाहरमें व्याप रहा, है इस विषयमें श्रुतिकाभी प्रमाण है " एष त आत्मा सर्वस्यान्तरः " इस कारण ज्ञानरूपी खड्गको लेकर देहाभिमानरूपी फाँसीको काटकर सुखी हो ॥ २० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां सान्वयभाषाटीकया सहितमात्मानुभवोपदेशवर्णनं नाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं प्रकरणम् २.

अहो निरंजनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः । एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः ॥ १ ॥

अन्वयः—अहो अहम् निरंजनः शान्तः प्रकृतेः परः बोधः (अस्मि) अहम् एतावंतम् कालम् मोहेन विडंबितः एव ॥ १ ॥

श्रीगुरुके वचनरूपी अमृत पान कर तिससे आत्माका अनुभव हुआ, इस कारण शिष्य अपने गुरुके प्रति आत्मानुभव कहता है कि, हे गुरो ! बडा आश्चर्य दीखनेमें आता है कि, मैं तो निरंजन हूं, तथा सर्वउपाधिरहित हूं, शान्त अर्थात् सर्वविकाररहित हूं, तथा प्रकृतिसे परे अर्थात् मायाके अंधकारसे रहित हूं, अहो ! आज दिनपर्यंत गुरुकी कृपा नहीं थी इस कारण बहुत मोह था और देह आत्माका विवेक नहीं था तिससे दुःखी था अब आज सद्गुरुकी कृपा हुई सो परम आनंदको प्राप्त हुआ हूं ॥ १ ॥

यथाप्रकाशयाम्येको देहमेनं तथा जगत् । अतो मम जगत्सर्वमथवा न च किंचन ॥ २ ॥

अन्वयः—यथा (अहम्) एकः (एव) जगत् प्रकाशयामि तथा एनम् देहम् (प्रकाशयामि) अतः सर्वम् जगत् मम अथवा च किञ्चन न ॥ २ ॥

ऊपरके श्लोकमें शिष्यने अपना मोह गुरुके पास वर्णन किया। अब गुरुकी कृपासे देह आत्माका विवेक प्राप्त हुआ तहां समाधान करता है कि, हे गुरो ! मैं जिस प्रकार स्थूल शरीरको प्रकाश करता हूं, तिसही प्रकार जगत्कोभी प्रकाश करता हूं तिस कारण देह जड है तिसही प्रकार जगत्भी जड है. यहां शंका होती है कि, शरीर जड और आत्मा चैतन्य है तिन दोनोंका संबंध किस प्रकार होता है ? तिसका समाधान करते हैं कि, भ्रांतिसे देहके विषयमें ममत्व माना है यह अज्ञानकल्पित है, देहका आदि लेकर बंधा जगत् दृश्य पदार्थ है, तिस कारण मेरे विषयमें कल्पित है, फिर यदि सत्य विचार करे तो देहादिक जगत् हैही नहीं, जगत्की उत्पत्ति

और प्रलय यह दोनों अज्ञानकल्पित हैं, तिस कारण देहसे पर आत्मा शुद्ध स्वरूप है ॥ २ ॥

सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाऽधुना । कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः--अहो अधुना सशरीरम् विश्वम् परित्यज्य कुतश्चित् कौशलात् एव मया परमात्मा विलोक्यते ॥ ३ ॥

शिष्य आशंका करता है कि, लिंगशरीर और कारणशरीर इन दोनोंका विवेक तो हुआ ही नहीं फिर प्रकृतिसे पर आत्मा किस प्रकार जाना जायगा ? तहां गुरु समाधान करते हैं कि, लिंगशरीर, कारणशरीर, तथा स्थूलशरीरसहित संपूर्ण विश्व है तहां गुरु शास्त्रके उपदेशके अनुसार त्यागकरके और उन गुरु शास्त्रकी कृपासे चातुर्यताको प्राप्त हुआ हूं तिस कारण परम श्रेष्ठ आत्मा जाननेमें आता है अर्थात् अध्यात्म वेदान्तविद्या प्राप्त होती है ॥ ३॥

यथा न तोयतो भिन्नास्तरंगाः फेन-बुद्बुदाः । आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम् ॥ ४ ॥

अन्वयः--यथा तोयतः तरंगाः फेनबुद्बुदाः भिन्नाः न तथा आत्म-विनिर्गतम् विश्वम् आत्मनः भिन्नम् न ॥ ४ ॥

शरीर तथा जगत् आत्मासे भिन्न होगा तौ द्वैत-भाव सिद्ध हो जायगा, ऐसी शिष्यकी शंका करने पर उसके उत्तरमें दृष्टांत कहते हैं कि, जिस प्रकार तरंग, झाग, बुलबुले जलसे अलग नहीं होते हैं, परंतु उन तीनोंका कारण एक जलमात्र है तिसही प्रकार त्रिगुणात्मक जगत् आत्मासे उत्पन्न हुआ है आत्मासे भिन्न नहीं है जिस प्रकार तरंग, झाग और बुलबुलोंमें जल व्याप्त है तिसही प्रकार सर्व जगत्में आत्मा व्यापक है, आत्मासे भिन्न कुछ नहीं है ॥४॥

तंतुमात्रो भवेदेव पटो यद्वद्विचारितः ।

आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम् ॥

अन्वयः—यद्वत् विचारितः पटः तंतुमात्रः एव भवेत् तद्वत् विचारितम् इदम् विश्वम् आत्मा आत्मतन्मात्रम् एव ॥ ५ ॥

सर्व जगत् आत्मस्वरूप है तिसके निरूपण करनेके अर्थ दूसरा दृष्टांत कहते हैं कि, विचारदृष्टिके विना देखे तौ वस्त्र सूत्रसे पृथक् प्रतीत होता है, परंतु विचारदृष्टिसे देखनेपर वस्त्र सूत्ररूपही है इसी प्रकार अज्ञानदृष्टिसे जगत् ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होता है परंतु शुद्धविचारपूर्वक देखनेसे संपूर्ण जगत् आत्मरूपही है सिद्धांत यह है कि, जिस प्रकार वस्त्रमें सूत्र व्यापक है, तिसी प्रकार जगत्में ब्रह्म व्यापक है ॥ ५ ॥

यथैवेक्षुरसे क्लृप्ता तेन व्याप्तैव शर्करा।
तथा विश्वं मयि क्लृप्तं मया व्याप्तं निरन्तरम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—यथा इक्षुरसे क्लृप्ता शर्करा तेन एव व्याप्ता तथा एव मयि क्लृप्तम् विश्वम् निरन्तरं मया व्याप्तम् ॥ ६ ॥

आत्मा संपूर्ण जगत्में व्यापक है इस विषयमें

तीसरा दृष्टांत दिखाते हैं, जिस प्रकार इक्षु (पौंडा) के रसके विषयमें शर्करा रहती है, और शर्कराके विषयमें रस व्याप्त है, तिसी प्रकार परमानंदरूप आत्माके विषयमें जगत् अध्यस्त है और जगत्के विषयमें निरंतर आत्मा व्याप्त है, तिस कारण विश्वभी आनंदस्वरूपही है । तिस करके " अस्ति, भाति, प्रियम्" इस प्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त है ॥ ६ ॥

आत्माज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते । रज्ज्वज्ञानादहिर्भातितज्ज्ञा-नाद्भासते न हि ॥ ७ ॥

अन्वयः--जगत् आत्माज्ञानात् भाति आत्मज्ञानात् न भासते हि रज्ज्वज्ञानात् अहिः भाति तज्ज्ञानात् न भासते ॥ ७ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि, हे गुरो ! यदि जगत् आत्मासे भिन्न नहीं है तो भिन्न प्रतीत किस प्रकार होता है ? तहां गुरु उत्तर देते हैं कि, जब आत्म-

ज्ञान नहीं होता है, तब जगत् भासता है और जब आत्मज्ञान हो जाता है, तब जगत् कोई वस्तु नहीं है, तहां दृष्टांत दिखाते हैं कि, जिस प्रकार अंधकारमें पडी हुई रज्जु भ्रमसे सर्प प्रतीत होने लगता है जब दीपकका प्रकाश होता है तब निश्चय हो जाता है कि, यह सर्प नहीं है ॥ ७ ॥

प्रकाशो मे निजं रूपं नातिरिक्तोस्म्यहं ततः । यदाप्रकाशते विश्वं तदाहं भास एव हि ॥ ८ ॥

अन्वयः--प्रकाशः मे निजम् रूपम् अहं ततः अतिरिक्तः न अस्मि हि यदा विश्वं प्रकाशते तदा अहं भासः एव ॥ ८ ॥

जिसको आत्मज्ञान नहीं होता है उसको प्रकाशभी नहीं होता है, फिर जगत्की प्रतीति किस प्रकार होती है? इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि, नित्य बोधरूप प्रकाश मेरा (आत्माका) स्वाभाविक स्वरूप है, इस कारण मैं (आत्मा) प्रकाशसे भिन्न नहीं हूं,

यहां शंका होती है कि, आत्मचैतन्य जब जगत्का प्रकाश हैं तो उसको अज्ञान किस प्रकार रहता है? उसका समाधान यह है कि, जिस प्रकार स्वप्नमें चैतन्य अविद्याकी उपाधिसे कल्पित विषयसुखको सत्य मानते है । तिससे चैतन्यमें किसी प्रकारका बोध नहीं होता है, आत्मचैतन्य सर्वकालमें है परंतु गुरुके मुखसे निश्चयपूर्वक समझे विना अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती है और आत्मा सत्य है यह वार्ता वेदादि-शास्त्रसंमत है, अर्थात् जगत्को आत्मा प्रकाश करता है यह सिद्धांत है ॥ ८ ॥

अहोविकल्पितंविश्वमज्ञानान्मयिभासते ।
रूप्यं शुक्तौफणीरज्जौवारिसूर्यकरेयथा ९।

अन्वयः--अहो यथा शुक्तौ रूप्यम् रज्जौ फणी सूर्यकरे वारि (तथा) अज्ञानात् विकल्पितम् विश्वम् मयि भासते ॥ ९ ॥

शिष्य विचार करता है कि, मैं स्वप्रकाश हूं तथापि अज्ञानसे मेरे विषे विश्व भासता है, यह

बडाही आश्चर्य है, तिसका दृष्टांतके द्वारा समाधान करते हैं कि जिस प्रकार भ्रांतिसे सीपीमें रजतकी प्रतीति होती है, जिस प्रकार रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है तथा जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंमें जलकी प्रतीति होती है तिसी प्रकार अज्ञानसे कल्पित विश्व मेरे विषें भासता है ॥ ९ ॥

मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति ।
मृदि कुम्भो जले वीचिः कनके कटकं यथा ॥

अन्वयः--इदम् विश्वं मत्तः विनिर्गतम् मयि एव लयम् एष्यति यथा कुम्भः मृदि वीचिः जले कटकम् कनके ॥ १० ॥

शिष्य आशंका करता है, कि सांख्यशास्त्रवा-लोंके मतानुसार तो जगत् मायाका विकार है इस कारण जगत् माया सकाशसे उत्पन्न होता है और अंतमें मायाके विषेंही लीन हो जाता है और आत्मा सकाशसे उत्पन्न नहीं होता है ? इस शंकाका गुरु समाधान करते हैं कि, यह मायासहित जगत्

आत्माके सकाशसे उत्पन्न हुआ है और अंतमें माया-के विषेंही लीन होगा, तहां दृष्टांत देते हैं कि, जिस प्रकार घट मृत्तिकामेंसे उत्पन्न होता है और अंतमें मृत्तिकाके विषेंही लीन हो जाता है और जिस प्रकार तरंग जलमेंसे उत्पन्न होते हैं और अंतमें जलके विषेंही लीन हो जाते हैं तथा जिस प्रकार कटक कुण्डलादि सुवर्णमेंसे उत्पन्न होते हैं और सुवर्णमेंही अंतमें लीन हो जाते हैं । तिसी प्रकार मायासहित जगत् आत्माके सकाशसे उत्पन्न होता है और अंतमें मायाके विषेंही लीन हो जाता है, सोई श्रुतिमेंभी कहा है " यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति " ॥ १० ॥

अहो अहं नमो मह्यं विनाशो यस्य नास्ति मे । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंतं जगन्नाशेपि तिष्ठतः ॥ ११ ॥

अन्वयः-अहो अहम् ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम् (यत्) जगत् (तस्य) नाशे अपि यस्य मे विनाशः न अस्ति (तस्मै) मह्यम् नमः ॥ ११ ॥

शिष्य आशंका करता है कि, यदि जगत्का उपादान कारण ब्रह्म होगा तब तौ ब्रह्मके विषें अनित्यता आवेगी, जिस प्रकार घट फूटता है और मृत्तिका बिखर जाती है, तिसी प्रकार जगत्के नष्ट होनेपर ब्रह्मभी छिन्न भिन्न (विनाशी) हो जायगा ? इस शंकाका समाधान करते हुए गुरु कहते हैं कि, मैं (आत्मा ब्रह्म) संपूर्ण उपादान कारण हूं, तोभी मेरा नाश नहीं होता है. यह बडा आश्चर्य है. सुवर्ण कटक और कुंडलका उपादान कारण होता है और कटक कुंडलके टूटनेपर सुवर्ण विकारको प्राप्त होता है, परंतु मैं तो जगत्का विवर्ताधिष्ठान हूं अर्थात् जिस प्रकार रज्जुमें सर्पकी भ्रांति होनेपर सर्प विवर्त कहाता है और रज्जु अधिष्ठान कहाता है तिसी प्रकार इसका भी वास्तविक अन्यथाभाव (परि-

णाम) होता है, तिस प्रकार जगत् मेरा परिणाम नहीं है, मैं संपूर्ण जगत्का कारण और अविनाशी हूं, तिस कारण मैं अपने स्वरूप (आत्मा) को नमस्कार करता हूं । प्रलयकालमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यंत संपूर्ण जगत् नाशको प्राप्त हो जाता है परंतु मेरा (आत्माका) नाश नहीं होता है, इस विषयमें श्रुतिकाभी प्रमाण है " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " अर्थात् ब्रह्म सत्य है, ज्ञानरूप है और अनंत है ॥ ११ ॥

अहो अहंनमोमह्यमेकोऽहंदेहवा-
नपि । क्वचिन्न गन्ता नागन्ता
व्याप्य विश्वमवस्थितः ॥ १२ ॥

अन्वयः-अहो अहम् (तस्मै) मह्यम् नमः (यत्) देहवान् अपि एकः अहम् विश्वम् व्याप्य अवस्थितः न क्वचित् गन्ता न आगंता ॥ १२ ॥

शिष्य आशंका करता है कि, सुखदुःखरूपी

देहयुक्त आत्मा अनेकरूप है, तिस कारण जाता है और आता है, फिर आत्माकी सर्वव्यापकता किस प्रकार सिद्ध होगी, तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, मैं बडा आश्चर्यरूप हूं उस कारण मैं अपने (आत्मा) को नमस्कार करता हूं। तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, क्या आश्चर्य है ? तिसे गुरु उत्तर देते हैं कि, मैं (आत्मा) नाना प्रकारके शरीरोंमें निवास करके नाना प्रकारके सुख दुःखको भोगता हूं, तथापि मैं एकरूप हूं, तहां दृष्टांत दिखाते हैं कि, जिस प्रकार जलसे भरे हुए अनेक पात्रोंमें भरे हुए जलके विषें शीत, उष्ण, सुगंध, दुर्गंध, शुद्ध, अशुद्ध इत्यादि अनेक उपाधियां रहती हैं और उन अनेकों पात्रोंमें भिन्न सूर्यके प्रतिबिंब पडते हैं, तथापि वह सूर्य एकही होता है और जलकी शीत उष्णादि उपाधियोंसे सहित होता है इसी प्रकार मैं संपूर्ण विश्वमें व्याप रहा हूं, तथापि जगत्‌की संपूर्ण उपा-

धियोंसे रहित हूं अर्थात् न कोई आता है और जाता है, आता है इस प्रकारकी जो प्रतीति है सो अज्ञानवश है, वास्तवमें नहीं है ॥ १२ ॥

अहो अहंनमोमह्यंदक्षोनास्तीहम-
त्समः ॥ असंस्पृश्य शरीरेणयेन
विश्वं चिरं धृतम् ॥ १३ ॥

अन्वयः-अहम् अहो (तस्मै) मह्यम् नमः इह मत्समः (कः अपि) दक्षः न अस्ति येन शरीरेण असंस्पृश्य (मया) चिरम् विश्वम् धृतम् ॥ १३ ॥

शिष्य शंका करता है कि, जिस आत्माका देहसे संग है, वह असंग किस प्रकार हो सकता है, तिसका गुरु समाधान करते हैं कि मैं आश्चर्यरूप हूं इस कारण मेरे अर्थ नमस्कार है, क्योंकि इस जगत्में मेरी समान कोई चतुर नहीं है, अर्थात् अघट-घटना करनेमें मैं चतुर हूँ क्योंकि मैं शरीरमें रहकर-रभी शरीरसे स्पर्श नहीं करता हूं और शरीरकार्य

करता हूं जिस प्रकार अग्नि घृतके पिंडमें लीन न होकरभी घृतपिंडको गलाकर रसरूप कर देता है, उसी प्रकार संपूर्ण जगत्‌में मैं लीन नहीं होता हूं और संपूर्ण जगत्‌को चिरकाल धारण करता हूं ॥ १३॥

अहो अहं नमो मह्यं यस्य मे नास्ति किञ्चन ॥ अथवायस्य मे सर्वं यद्वा-ङ्मनसगोचरम् ॥ १४ ॥

अन्वयः-अहो अहम् यस्य मे (परमार्थतः) किञ्चन न अस्ति अथवा यत् वाङ्मनसगोचरम् (तत्) सर्वम् यस्य मे (सम्बन्धि अस्ति अतः) मह्यं नमः ॥ १४ ॥

शिष्य आशंका करता है कि, हे गुरो ! संबंधके विना जगत् किस प्रकार धारण होता है ? भीत गृहकी छत आदिको धारण करती है परंतु काष्ठ आदिसे उसका संबंध होता है, सो आत्मा विना संबंधके जगत्‌को किस प्रकार धारण करता है इसका गुरु समाधान करते हैं कि, अहो मैं बड़ा आश्चर्य रूप हूं,

इस कारण अपने स्वरूपको नमस्कार करूं हूं। आश्चर्यरूपता दिखाते हैं कि, परमार्थ दृष्टिसे देखो तो मेरा किसीसे संबंध नहीं है, और विचारदृष्टिसे देखो तो मुझसे भिन्नभी कोई नहीं है और यदि सांसारिक दृष्टिसे देखो तो जो जो कुछ मन वाणीसे विचारा जाता है वह सब मेरा संबंधी है परंतु वह मिथ्या संबंध है जिस प्रकार सुवर्ण तथा कुंडलका संबंध है, इसी प्रकार मेरा और जगत्का संबंध है अर्थात् मेरा सबसे संबंध हैभी और नहींभी है, इस कारण आश्चर्यरूप जो मैं तिस मेरे अर्थ नमस्कार है ॥ १४ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वास्तवम् । अज्ञानाद्भाति यत्रेदं सोऽहमस्मि निरञ्जनः ॥ १५ ॥

अन्वयः-ज्ञानम् ज्ञेयम् तथा ज्ञाता (इदम) त्रितयम् वास्तवम् न अस्ति यत्र इदम् अज्ञानात् भाति सः अहम् निरञ्जनः अस्मि ॥ १५ ॥

त्रिपुटीरूप जगत् तो सत्यसा प्रतीत होता है फिर जगत्का और आत्माका मिथ्या संबंध किस प्रकार कहा, इस शिष्यकी शंकाका गुरु समाधान करते हैं कि, ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता इन तीनोंका इकट्ठा नाम "त्रिपुटी" है, वह त्रिपुटी वास्तविक अर्थात् सत्य नहीं है, तिस त्रिपुटीका जिस मेरे (आत्माके) विषे मिथ्या संबंध अर्थात् अज्ञानसे प्रतीत है, वह मैं अर्थात् आत्मा तो निरंजन कहिये संपूर्ण प्रपंचसे रहित हूं ॥ १५ ॥

द्वैतमूलमहोदुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम् । दृश्यमेतन्मृषासर्वमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः ॥ १६ ॥

अन्वयः—अहो (निरंजनस्य अपि आत्मनः) द्वैतमूलम् दुःखम् (भवति) तस्य भेषजम् दृश्यम् सर्वम् मृषा अहम् एकः अमलः चिद्रसः (इति बोधात्) अन्यत् न अस्ति ॥ १६ ॥

शिष्य शंका करता है कि यदि आत्मा निरंजन

है तो दुःखका संबंध किस प्रकार होता है, तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, सुख दुःख भ्रांतिमात्र हैं, वास्तविक नहीं, निरंजन आत्माके विषें द्वैतमात्रसे सुखदुःख भासता है वास्तवमें आत्माके विषें सुख दुःख कुछभी नहीं होता है तहां शिष्य प्रश्न करता है कि, हे गुरो! द्वैतभ्रमकी निवृत्ति होती है? तिसका गुरु उत्तर देते हैं कि हे शिष्य! मैं आत्मा हूं, अमल हूं, माया और मायाका कार्य जो जगत् तिससे रहित चिन्मात्र अद्वितीयरूप हूं और दृश्यमान यह संपूर्ण संसार जड और मिथ्या है सत्य नहीं है ऐसा ज्ञान होनेसे द्वैत भ्रम नष्ट हो जाता है, इसके बिना दूसरी द्वैत भ्रमसे उत्पन्न हुए दुःखके दूर करनेकी अन्य औषधि नहीं है ॥ १६ ॥

बोधमात्रोऽहमज्ञानादुपाधिः कल्पितो मया। एवं विमृशतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम ॥ १७ ॥

अन्वयः--अहम् बोधमात्रः मया अज्ञानात् उपाधिः कल्पितः एवम् विमृशतः मम निर्विकल्पे स्थितिः (प्रजाता) ॥ १७ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्माके विषें द्वैतप्रपंचका अध्यास किस प्रकार हुआ है और वह कल्पित है या वास्तविक है तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, मैं बोधरूप चैतन्यरूप हूं, परंतु मैंने अपने विषें अज्ञानसे उपाधि (अहंकारादि द्वैतप्रपंच) कल्पना किया है अर्थात् मैं अखंडानंद ब्रह्म नहीं हूं किंतु देह हूं यह माना है. इस कारण नित्य विचार करके मेरी निर्विकल्प अर्थात् वास्तविक निज स्वरूप (ब्रह्म) के विषें स्थिति हुई है ॥ १७ ॥

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया । अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ॥ १८ ॥

अन्वयः--मे बंधः वा मोक्षः न अस्ति अहो मयि स्थितम् (अपि) विश्वं वस्तुतः मयि स्थितम् (इति विचारतः अपि) निराश्रया भ्रांतिः (एव) शान्ता ॥ १८ ॥

शिष्य शंका करता है, कि, हे गुरो ! यदि केवल विचार करनेहीसे मुक्ति होती है तब तो मुक्तिका विनाश होना चाहिये क्योंकि जब विचार नष्ट होता है तब मुक्तिकाभी नाश होना चाहिये और यदि कहो कि विचारके विनाही मुक्ति हो जाती है तब तो गुरु और शास्त्रके उपदेशको प्राप्त न होनेवाले पुरुषोंकीभी मुक्ति होना चाहिये ? तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, यदि शुद्ध विचारकी दृष्टिसे देखो तो मेरे बंध नहीं है और मोक्षभी नहीं है अर्थात् विचार-दृष्टिसे न आत्माका बंध होता है, न मोक्ष होता है, क्योंकि मैं (आत्मा) नित्य चित्स्वरूप हूं तहां शिष्य शंकित होकर प्रश्न करता है कि, हे गुरो ! वेदान्तशास्त्र विचारका जो फल है सो कहिये तहां गुरु कहते हैं कि भ्रांतिकी निवृत्तिही वेदांतशास्त्रके विचारका फल है क्योंकि बडा आश्चर्य है जो मेरे विषें स्थितभी जगत् वास्तवमें मेरे विषें स्थित नहीं है

इस प्रकार विचार करने परभी भ्रांति मात्र नष्ट हुई परमानंदकी प्राप्ति नहीं हुई इससे प्रतीत होता है कि भ्रांतिकी निवृत्तिही शास्त्रविचारका फल है, तहां शिष्य कहता है कि हे गुरो ! भ्रांति कैसी थी जो विचार करनेपर तुरंतही नष्ट हो गई, तिसका गुरु उत्तर देते हैं कि, भ्रांति निराश्रय अर्थात् अज्ञानरूप थी सो विचारसे नष्ट हो गई ॥ १८ ॥

स शरीरमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चितम् । शुद्धचिन्मात्र आत्मा च तत्कस्मिन्कल्पनाधुना ॥ १९ ॥

अन्वयः-इदम् शरीरम् विश्वं किञ्चित् न इति निश्चितम् आत्मा च शुद्धचिन्मात्रः तत् अधुना कल्पना कस्मिन् (स्यात्) ॥ १९ ॥

शिष्य शंका करता है कि उस मुक्त पुरुषके विषेंभी प्रपंचका उदय होना चाहिये, क्योंकि रज्जु होती है तो उसमें कभी अंधकारके विषें द्वैत सर्पकी भ्रांति होही जाती है, तिसी प्रकार अधिष्ठान

जो ब्रह्म है तिसके विषें द्वैत (प्रपंच) की कल्पना हो जाती है इस शंकाका गुरु समाधान करते हैं कि, यह शरीरसहित संपूर्ण जगत् जो प्रतीत होता है सो कुछ नहीं है अर्थात् न सत् है न असत् है, क्योंकि सब ब्रह्मरूप है, सोई श्रुतिमेंभी कहा है " नेह नानास्ति किञ्चन " अर्थात् यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूपही है, आत्मा शुद्ध अर्थात् मायारूपी मलरहित चित्स्वरूप है, इस कारण किस अधिष्ठानमें विश्वकी कल्पना होती है ? ॥ १९ ॥

शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयं तथा । कल्पनामात्रमेवैतत्किं मे कार्यं चिदात्मनः ॥ २० ॥

अन्वयः–शरीरम् स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ तथा भयम् एतत् कल्पनामात्रमेव चिदात्मनः मे एतैः किम् कार्यम् ॥ २० ॥

शिष्य शंका करता है कि, हे गुरो ! यदि संपूर्ण प्रपंच मिथ्या है, तब तो ब्राह्मणादि वर्ण और मनु-

ष्यादि जातिभी अवास्तविक होंगे और वर्णजातिके अर्थ प्रवृत्त होनेवाले विधि निषेध शास्त्रोंके विषें वर्णन किये हुए स्वर्ग नरक तथा स्वर्गके विषें प्रीति और नरकका भयभी अवास्तविक हो जाँयगे और शास्त्रोंके विषें वर्णन किये हुए बंध मोक्षभी अवास्तविक अर्थात् मिथ्या हो जायँगे ? तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य ! तैंने जो शंका की सो शरीर, स्वर्ग, नरक, बंध, मोक्ष तथा भय आदि संपूर्ण मिथ्या हैं, तिन शरीरादिके साथ सच्चिदानंदस्वरूप जो मैं तिस मेरा कोई नहीं है; क्योंकि संपूर्ण विधि-निषेधरूप कार्य अज्ञानी पुरुषके होते हैं, ब्रह्मज्ञानीके नहीं ॥ २० ॥

अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम । अरण्यमिव संवृत्तं क रतिं करवाण्यहम् ॥ २१ ॥

अन्वयः--अहो न द्वैतम् पश्यतः मम जनसमूहे अपि अरण्यम् इव संवृत्तम् अहम् क्व रतिम् करवाणि ॥ २१ ॥

अब इस प्रकार वर्णन करते हैं कि, जिस प्रकार स्वर्ग नरक आदिको अवास्तविक वर्णन किया तिसी प्रकार यह लोकभी अवास्तविक है इस कारण इस लोकमें मेरी प्रीति नहीं होती है, बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि, मैं जनसमूहमें निवास करता हूं, परंतु मेरे मनको वह जनसमूह अरण्यसा प्रतीत होता है, सो मैं इस अवास्तविक कहिये मिथ्याभूत संसारके विषें क्या प्रीति करूं ? ॥ २१ ॥

नाहं देहो न मेदेहो जीवो नाहमहंहि चित् । अयमेवहि मे बन्धआसीद्या जीवितेस्पृहा ॥ २२ ॥

अन्वयः--अहम् देहः न मे देहः न अहम् जीवः न हि अहम् चित् मे अयम् एव हि बन्धः या जीविते स्पृहा आसीत् ॥ २२ ॥

शिष्य शंका करता है कि, हे गुरो ! पुरुष शरी-

रके विषें मैं हूं मेरा है इत्यादि व्यवहार करके प्रीति

करता है इस कारण शरीरके विषें तो स्पृहा करनीही होगी, तिसका समाधान करते हैं कि, देह मैं नहीं हूं, क्योंकि देह जड है और देह मेरा नहीं है क्योंकि मैं तो असंग हूं और जीव जो अहंकार सो मैं नहीं, तहां शंका होती है कि, तू कौन है ? तिसके उत्तरमें कहते हैं कि, मैं तो चैतन्यस्वरूप ब्रह्म हूं तहां शंका होती है कि, यदि आत्मा चैतन्यस्वरूप है, देहादिरूप जड नहीं है तो फिर ज्ञानी पुरुषोंकीभी जीवनमें इच्छा क्यों होती है ? तिसका समाधान करते हैं कि; यह जीवनेकी जो इच्छा है सोई बंधन है, दूसरा बंधन नहीं है, क्योंकि, पुरुष जीवनके निमित्तही सुवर्णकी चोरी आदि अनेक प्रकारके अनर्थ करके कर्मानुसार संसारबंधनमें बँधता है और सच्चिदानंद स्वरूप आत्माके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होनेपर पुरुषकी जीवनमें स्पृहा नहीं रहती है ॥ २२ ॥

अहो भुवनकल्लोलैर्विचित्रैर्द्राक्समुत्थि-
तम् । मय्यनन्तमहाम्भोधौ चित्तवाते
समुद्यते ॥ २३ ॥

अन्वयः–अहो अनन्तमहाम्भोधौ मयि चित्तवाते समुद्यते विचित्रैः भुवनकल्लोलैः द्राक्समुत्थितम् ॥ २३ ॥

जब पुरुषको सबके अधिष्ठानरूप आत्मस्वरू-पका ज्ञान होता है, तब कहता है कि, अहो बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि, मैं चैतन्य समुद्रस्वरूप हूं और मेरे विषें चित्तरूपी वायुके योगसे नानाप्रका-रके ब्रह्मांडरूपी तरंग उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जिस प्रकार जलसे तरंग भिन्न नहीं होते हैं, तिसी प्रकार ब्रह्मांड मुझसे भिन्न नहीं है ॥ २३ ॥

मय्यनंतमहाम्भोधौ चित्तवाते प्रशा-
म्यति । अभाग्याज्जीववणिजो ज-
गत्पोतो विनश्वरः ॥ २४ ॥

अन्वयः–अनन्तमहाम्भोधौ मयि चित्तवाते प्रशाम्यति (सति) जीववणिजः अभाग्यात् जगत्पोतः विनश्वरः (भवति) ॥२४॥

अब प्रारब्ध कर्मोंके नाशकी अवस्था दिखाते हैं कि, मैं सर्व व्यापक चैतन्यस्वरूप समुद्र हूं, तिस मेरे विषे चित्तवायुके अर्थात् संकल्पविकल्पात्मक मनरूप वायुके शांत होनेपर, अर्थात् संकल्पादिरहित होनेपर जीवात्मारूप व्यापारीके अभाग्य कहिये प्रारब्धके नाशरूप विपरीत पवनसे जगत् समुद्रके विषे लगा हुआ शरीर आदिरूप नौकाका समूह विनाशवान् होता है ॥ २४ ॥

मय्यनन्तमहाम्भोधावाश्चर्यं जीववीचयः। उद्यंतिघ्नंतिखेलंतिप्रविशंति स्वभावतः ॥ २५ ॥

अन्वयः–आश्चर्य्यम् (यत्) अनन्तमहाम्भोधौ मयि जीववीचयः स्वभावतः उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति ॥ २५ ॥

अब संपूर्ण प्रपंचको मिथ्या जानकर कहते हैं कि, आश्चर्य है कि, निष्क्रिय निर्विकार मुझ चैतन्यसमुद्रके विषें अविद्याकामकर्मरूप स्वभावसे जीव-

रूपी तरंग उत्पन्न होते हैं और परस्पर शत्रुभावसे ताडन करते हैं और कोई मित्रभावसे परस्पर क्रीडा करते हैं और अविद्याकाम कर्मके नाश होनेपर मेरे विषें लीन हो जाते हैं, अर्थात् जीवरूपी तरंग अविद्या बंधनसे उत्पन्न वास्तवमें चिद्रूप हैं जिस प्रकार घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है, तिस प्रकार मेरे विषें संपूर्ण जीव लीन हो जाते हैं, यही ज्ञान है ॥ २५ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां सान्वयभाषाटीकया सहितं शिष्येणोक्तमात्मानुभवोल्लासपञ्चविंशतिकं नाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं प्रकरणम् ३.

अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञाय तत्त्वतः । तवात्मज्ञस्य धीरस्य

कथमर्थार्जने रतिः ॥ १ ॥

अन्वयः--हे शिष्य ! अविनाशिनम् एकम् आत्मानम् विज्ञाय तत्त्वतः आत्मज्ञस्य धीरस्य तव अर्थार्जने रतिः कथम् (लक्ष्यते)॥१॥

आत्मज्ञानके अनुभवसे युक्तभी अपने शिष्यको व्यवहारमें स्थित देखकर उसके आत्मज्ञानानुभवकी परीक्षा करनेके निमित्त उसकी व्यवहारके विषें स्थितिका निंदा करके आत्मानुभवात्मक स्थितिका उपदेश करते हैं कि, हे शिष्य ! अविनाशी कहिये त्रिकालमें सत्यस्वरूप आत्माको किसी देशकालमें भेदको नहीं प्राप्त होनेवाला जानकर, यथार्थरूपसे आत्मज्ञानी धैर्यवान् जो तू तिस तेरी व्यावहारिक अर्थके संग्रह करनेमें प्रीति किस कारण देखनेमें आती है ॥ १ ॥

आत्माज्ञानादहो प्रीतिर्विषयभ्रमगोचरे । शुक्तेरज्ञानतो लोभो यथा रजतविभ्रमे ॥ २ ॥

अन्वयः--अहो (शिष्य) ! यथा शुक्तेः अज्ञानतः रजतविभ्रमे लोभः

(भवति तथा) आत्माज्ञानात् विषयभ्रमगोचरे प्रीतिः (भवति) ॥२॥

विषयके विषें जो प्रीति होती है सो आत्माके अज्ञानसे होती है इस वार्त्ताको दृष्टांत और युक्तिपूर्वक दिखाते हैं, अहो शिष्य ! जिस प्रकार सीपीका अज्ञान होनेसे रजतकी भ्रांतिकरके लोभ होता है, तिसी प्रकार आत्माके अज्ञानसे भ्रांति ज्ञानसे प्रतीत होनेवाले विषयोंमें प्रीति होती है । जिनको आत्मज्ञान होता है, उन ज्ञानियोंकी विषयोंमें कदापि प्रीति नहीं होती है ॥ २ ॥

विश्वं स्फुरति यत्रेदंतरंगा इव सा-
गरे ॥ सोऽहमस्मीति विज्ञाय किं
दीनइवधावसि ॥ ३ ॥

अन्वयः--सागरे तरंगा इव यत्र इदम् विश्वम् स्फुरति सः अहम् अस्मि इति विज्ञाय दीनः इव किम् धावसि ॥ ३ ॥

ऊपर इस प्रकार कहा है कि, विषयोंके विषें जो प्रीति होतीहै, सो अज्ञानसे होतीहै, अब इस वार्त्ताका वर्णन करते हैं कि, संपूर्ण अध्यस्तको अधिष्ठानभूत

जो आत्मा तिसके जाननेपर फिर विषयोंके विषें प्रीति नहीं होती है जिस प्रकार समुद्रके विषें तरंग स्फुरते हैं अर्थात् अभिन्नरूप होते हैं तिस प्रकार जिस आत्माके विषें यह विश्व अभिन्नरूप है वह निर्विशेष आत्मा मैं हूं इस प्रकार साक्षात् करके दीन पुरुषकी समान मैं हूं, और मेरा है इत्यादि अभिमान करके क्यों दौडता है ॥ ३ ॥

श्रुत्वापि शुद्धचैतन्यमात्मानमतिसुंदरम् । उपस्थेत्यंतसंसक्तो मालिन्यमधिगच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः–शुद्धचैतन्यम् अतिसुन्दरम् आत्मानम् श्रुत्वा अपि उपस्थे अत्यन्तसंसक्तः (आत्मज्ञः) मालिन्यम् अधिगच्छति ॥ ४ ॥

ऊपरके तीन श्लोकोंमें शिष्यकी व्यवहारावस्थाकी निंदा की अब संपूर्णही ज्ञानियोंकी व्यवहारावस्थामें स्थितिकी निंदा करते हैं कि, गुरुके मुखसे वेदान्तवाक्योंसे अतिसुन्दर शुद्ध चैतन्य

आत्माको श्रवण करके तथा साक्षात् करके तदनंतर समीपस्थ विषयोंके विषें प्रीति करनेवाला आत्म-ज्ञानी मालिन्य कहिये मूढपनेको प्राप्त हो जाताहै॥४॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
मुनेर्जानतआश्चर्यंममत्वमनुवर्त्तते ॥५॥

अन्वयः–सर्वभूतेषु च आत्मानम् आत्मनि च सर्वभूतानि जानतः मुनेः (विषयेषु) ममत्वम् अनुवर्त्तते (इति) आश्चर्यम् ॥ ५ ॥

फिरभी ज्ञानीके विषयोंमें प्रीति करनेको निंदा करते हैं कि, ब्रह्मसे लेकर तृणपर्यंत संपूर्ण प्राणियोंके विषें अधिष्ठानरूपसे आत्मा विद्यमान है और संपूर्ण प्राणी आत्माके विषें अध्यस्त अर्थात् कल्पित हैं जिस प्रकार कि, रज्जुके विषें सर्प कल्पित होता है इस प्रकार जानते हुएभी मुनिकी विषयोंके विषें ममता होती है, यह बडाही आश्चर्य है. क्योंकि सीपीके विषें रजतको कल्पित जानकरभी ममता करना मूर्खताही होती है ॥ ५ ॥

आस्थितः परमाद्वैतं मोक्षार्थेऽपि व्यवस्थितः । आश्चर्यं कामवशगो विकलः केलिशिक्षया ॥ ६ ॥

अन्वयः-परमाद्वैतम् आस्थितः (तथा) मोक्षार्थे व्यवस्थितः अपि कामवशगः (सन्) केलिशिक्षया विकलः (दृश्यते इति) आश्चर्यम् ॥ ६ ॥

आत्मज्ञानीका विषयोंके विषें प्रीति करनेकी निंदा करते हुए कहते हैं कि, परम अद्वैत अर्थात् सजातीयस्वगतभेदशून्य जो ब्रह्म तिसका आश्रय और मोक्षरूपी सच्चिदानंदस्वरूप विषें निवास करने-वाला पुरुष कामवश होकर नाना प्रकारके क्रीडाके अभ्याससे अर्थात् नाना प्रकारके विषयोंमें लव-लीन होकर विकल देखनेमें आता है, यह बडाही आश्चर्य है ॥ ६ ॥

उद्भूतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्यातिदुर्बलः । आश्चर्यं काममाकांक्षेत्कालमंतमनुश्रितः ॥ ७ ॥

अन्वयः--अन्तम् कालम् अनुश्रितः अतिदुर्बलः (ज्ञानी) उद्भूतम् ज्ञानदुर्मित्रम् अवधार्य (अपि) कामम् आकांक्षेत् (इति) आश्चर्यम्॥७॥

अब इस वार्ताका वर्णन करते हैं कि, विवेकी पुरुषको सर्वथा विषयवासनाका त्याग करना चाहिये, उद्भूत कहिये उत्पन्न होनेवाला जो काम वह महाशत्रु ज्ञानको नष्ट करनेवाला है ऐसा विचार करकेभी अति दीन होकर ज्ञानी विषयभोगकी आकांक्षा करता है यह बडेही आश्चर्यकी वार्ता है, क्योंकि जो पुरुष विषयवासनामें लवलीन होता है वह कालग्रास होता है अर्थात् क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है इस कारण ज्ञानी पुरुषको विषयतृष्णा नहीं रखनी चाहिये ॥ ७ ॥

इहामुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यवि-
वेकिनः । आश्चर्यं मोक्षकामस्य
मोक्षादेवविभीषिका ॥ ८ ॥

अन्वयः--इह अमुत्र विरक्तस्य नित्यानित्यविवेकिनः मोक्षकामस्य मोक्षात् एव विभीषिका (भवति इति) आश्चर्यम् ॥ ८ ॥

अब इस वार्ताका वर्णन करते हैं कि, ज्ञानी पुरुषको विषयोंका वियोग होनेपर शोक नहीं करना चाहिये जिसको इस लोक और परलोकके सुखसे वैराग्य हो गया है और आत्मा नित्य है तथा जगत् अनित्य है, इस प्रकार जिसको ज्ञान हुआ है, और मोक्ष जो सच्चिदानंदकी प्राप्ति तिसके विषे जिसकी अत्यंत अभिलाषा है, वह पुरुषभी बलवान् देह आदि असत् स्त्रीपुत्रादिके वियोगसे भयभीत होता है यह बडेही आश्चर्यकी वार्ता है, स्वप्नमें अनेक प्रकारके सुख देखनेपरभी जाग्रत् अवस्थामें वह सुख नहीं रहते हैं तो उन सुखोंका कोई पुरुष शोक नहीं करता है तिसी प्रकार स्त्री पुत्र धन आदि असत् वस्तुका वियोग होनेपर शोक करना योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

धीरस्तुभोज्यमानोपिपीड्यमानो-
पिसर्वदा । आत्मानंकेवलंपश्यन्न
तुष्यतिनकुप्यति ॥ ९ ॥

अन्वयः--धीरः तु (लोकैः विषयान्) भोज्यमानः अपि (निन्दादिना) पीड्यमानः अपि केवलम् आत्मानम् पश्यन् न तुष्यति न कुप्यति ॥ ९ ॥

अब इस वार्ताका वर्णन करते हैं कि, ज्ञानीको शोक हर्ष नहीं करने चाहिये, ज्ञानी पुरुषोंको जगत्के विषें पुण्यवान् पुरुष नाना प्रकारके भोग कराते हैं, परंतु वह ज्ञानी पुरुष तिससे हर्षको नहीं प्राप्त होता है और पापी पुरुष पीडा देते हैं तो उससे शोक नहीं करता है क्योंकि वह ज्ञानी पुरुष जानता है कि, आत्मा सुखदुःखरहित है अर्थात् आत्माको कदापि हर्ष शोक नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥

चेष्टमानं शरीरं स्वं पश्यत्यन्यशरीरवत्। संस्तवे चापि निन्दायां कथं क्षुभ्येन्महाशयः ॥ १० ॥

अन्वयः--(यः) चेष्टमानं स्वम् शरीरम् अन्यशरीरवत् पश्यति (सः) महाशयः संस्तवे अपि च निन्दायाम् कथम् क्षुभ्येत् ॥ १० ॥

हर्ष शोकके हेतु जो स्तुति निंदा आदि सो तो शरीरके धर्म हैं और शरीर आत्मासे भिन्न है फिर ज्ञानीको हर्ष शोक किस प्रकार हो सकते हैं इस बातोंका वर्णन करते हैं, जो ज्ञानी पुरुष चेष्टा करनेवाले अपने शरीरको अन्य पुरुषके शरीरकी समान आत्मासे भिन्न देखता है, वह महाशय स्तुति और निंदाके विषें किस प्रकार हर्षशोकरूप क्षोभको प्राप्त होयगा ? अर्थात् नहीं प्राप्त होयगा ॥ १० ॥

मायामात्रमिदं विश्वं पश्यन्विगत-
कौतुकः । अपि सन्निहिते मृत्यौ
कथं त्रस्यति धीरधीः ॥ ११ ॥

अन्वयः—इदम् विश्वम् मायामात्रम् (इति) पश्यन् विगतकौतुकः धीरधीः मृत्यौ सन्निहिते अपि कथम् त्रस्यति ॥ ११ ॥

जिसका मरण होता है और जो बंध करता है ये दोनों अनित्य हैं इस प्रकार जाननेके कारण ज्ञानीको मृत्युकालके समीप होनेपरभी भय किस प्रकार हो

सकता है इस वार्ताका वर्णन करते हैं, यह दृश्यमान-विश्व मायामात्र कहिये मिथ्यारूप है इस प्रकार देखता हुआ है और कहां लीन होयगा इस प्रकार विचार नहीं करनेवाला ज्ञानी पुरुष मृत्युके समीप आने-पर भीत नहीं होता है ॥ ११ ॥

निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः । तस्यात्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन जायते ॥ १२ ॥

अन्वयः—नैराश्ये आपि यस्य मानसम् निःस्पृहम् (भवति तस्य) आत्मज्ञानतृप्तस्य महात्मनः केन (समम्) तुलनां जायते ॥ १२ ॥

अब ज्ञानीका सर्वकी अपेक्षा उत्कृष्टपना दिखाते हैं कि मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकार ज्ञान होनेपर जिसके संपूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गये हैं ऐसा महात्मा ज्ञानी पुरुष तिसका मन मोक्षके विषेभी निराश होता है अर्थात् वह मोक्षकी अभिलाषा नहीं करता है ऐसे ज्ञानीकी किससे तुलना की जाय अर्थात् ज्ञानीके तुल्य कोईभी नहीं होता है ॥ १२ ॥

स्वभावादेव जानाति दृश्यमेतन्न किञ्चन । इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं स किं पश्यति धीरधीः ॥ १३ ॥

अन्वयः—स्वभावात् एव (इदम्) दृश्यम् किञ्चन न (इति) जानाति स धीरधीः इदम् ग्राह्यम् इदम् त्याज्यम (इति) किम् पश्यति ॥ १३ ॥

ज्ञानी पुरुषको " यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है " इस प्रकार व्यवहार नहीं करना चाहिये, इस वार्त्ताका वर्णन करते हैं, स्वभावसेही अर्थात् अपनी सत्तासेही जिस प्रकार सीपीके विषें रजतकल्पना मात्र होता है, तिसी प्रकार यह दृश्यमान द्वैत, प्रपंच मिथ्यारूप है, जगत् कल्पित है अर्थात् न सत् है न असत् इस प्रकार जाननेवाले ज्ञानीकी बुद्धि धैर्यसंपन्न हो जाती है तोभी वह ज्ञानी " यह वस्तु ग्रहण करने योग्य है, यह वस्तु त्यागने योग्य है " इस प्रकारका व्यवहार क्यों करता है, यह बडीही आश्चर्यकी वार्त्ता है अर्थात्

ज्ञानी पुरुषको कदापि यह वस्तु त्यागने योग्य है, यह वस्तु ग्रहण करने योग्य है इस प्रकार व्यवहार नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः । यदृच्छयागतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये ॥ १४ ॥

अन्वयः—अन्तस्त्यक्तकषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः यदृच्छया आगतः भोगः दुःखाय न (भवति) तुष्टये (च) न (भवति) ॥ १४ ॥

उपरोक्त विषयमें हेतु कहते हैं कि, अन्तःकरणके रागद्वेषादि कषायोंको त्यागनेवाले और शीत उष्णादि द्वंद्वरहित तथा विषयमात्रकी इच्छासे रहित जो ज्ञानी पुरुष तिसको दैवगतिसे प्राप्त हुआ भोग न दुःखदायक होता है और न प्रसन्न करनेवाला होता है ॥ १४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रविरचितायां ब्रह्मविद्यायां सान्वयभाषाटीकया सहितमाक्षेपद्वारोपदेशकं नाम तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ तुरीयं प्रकरणम् ४.

**हन्तात्मज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोग-
लीलया । नहि संसारवाहीकैर्मूढैः
सह समानता ॥ १ ॥**

अन्वयः—हन्त भोगलीलया खेलतः आत्मज्ञस्य धीरस्य संसारवाहीकैः मूढैः सह समानता नहि ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीगुरुने शिष्यकी परीक्षा लेनेके निमित्त आक्षेप करे, अब तिसके उत्तरमें शिष्य गुरुके प्रति इस प्रकार कहता है कि, ज्ञानी संपूर्ण व्यवहारोंको मिथ्या जानता है; और प्रारब्धानुकूल नाना प्रकारके जो भोग प्राप्त होते हैं उनको आत्म-विलास मानता है. आनंदकी वार्ता है कि, जो आत्मज्ञानी है वह अपने आत्माको संपूर्ण जग-त्का अधिष्ठान जानता है, वही धैर्यवान् है, अर्थात् उसका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं होता है, प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए विषयोंकी

क्रीडाके विषें रमण करनेवाले तिस ज्ञानीको संसारके विषें देहाभिमान करनेवाले मूर्खोंसे तुल्यता नहीं होती है, सोई गीताके विषें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है- " तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः । गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ " अर्थात् आत्मज्ञानी सम्पूर्ण व्यवहारोंमें रहता है और किसी कार्यका अभिमान नहीं करता है क्योंकि वह जानता है कि, गुण गुणोंके विषें वर्तते हैं; मेरी कोई हानि नहीं है मैं तो साक्षी हूं ॥ १ ॥

यत्पदंप्रेप्सवोदीनाःशक्राद्याः सर्वदेवताः । अहोतत्रस्थितोयोगीनहर्षमुपगच्छति ॥ २ ॥

अन्वयः-अहो शक्राद्याः सर्वदेवताः यत्पदम् प्रेप्सवः (सन्तः) दीनाः वर्त्तन्ते तत्र स्थितः योगी हर्षम् न उपगच्छति ॥ २ ॥

बड़ा आश्चर्य होता है कि, इंद्रादिक सब देवता...

बर्ताव करनेवाला ज्ञानी संसारी पुरुषोंकी तुल्य क्यों नहीं होता है, तिसका समाधान करते हैं कि बडे आश्चर्यकी वार्ता है, हे गुरो ! इंद्र आदि संपूर्ण देवता जिस आत्मपदकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए आत्मपदकी प्राप्ति न होनेसे दीनताको प्राप्त होते हैं, तिस सच्चिदानंदस्वरूप आत्मपदके विषें स्थित अर्थात् तत् त्वम् पदार्थके ऐक्यज्ञानसे आत्मपदके विषें वर्तमान आत्मज्ञानी विषयभोगसे सुखको नहीं प्राप्त होता है और तिस विषयसुखका नाश होनेपर शोक नहीं करता है ॥ २ ॥

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यन्तर्न जायते । न ह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानापि संगतिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—(यथा) हि आकाशस्य धूमेन (सह) दृश्यमाना अपि (सङ्गतिः) न (अस्ति तथा) हि तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्याम् अन्तः स्पर्शः न जायते ॥ ३ ॥

अब यह वर्णन करते हैं कि, आत्मज्ञानी पुण्य और पापसे लिप्त नहीं होता है, 'तत् त्वम्' पदार्थकी एकताको जाननेवाले तत्त्वज्ञानीको अंतःकरणके धर्म जो पुण्य पाप तिनसे संबंध नहीं होता है, वह वेदोक्त विधि निषेधके बंधनमें नहीं होता है. क्योंकि जिसको आत्मज्ञान हो जाता है, उसके अतःकरणमें पाप पुण्यका संबंध नहीं होता है, जिस प्रकार धूम आकाशमें जाता है, परंतु उस धूमका आकाशसे संबंध नहीं होता है गीताके विषें कहा है कि, "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मोंको भस्म कर देता है ॥ ३ ॥

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना। यदृच्छयावर्त्तमानंतं निषेद्धुं क्षमेतकः ॥ ४ ॥

अन्वयः- येन महात्मना इदम् सर्वम् जगत् आत्मा एव (इति) ज्ञातम् तम् यदृच्छया वर्त्तमानम् कः निषेद्धुम् क्षमेत ॥ ४ ॥

तहां शंका होती है कि, ज्ञानी कर्म करता है और उसको पाप पुण्यका स्पर्श नहीं होता है, यह कैसे हो सकता है तिसका समाधान करते हैं कि जिस ज्ञानी महात्माने " यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् आत्माही है " इस प्रकार जान लिया और तदनंतर प्रारब्धके वशीभूत होकर वर्तता है, उस ज्ञानीको कोई रोक नहीं सकता है अर्थात् वेदवचनभी ज्ञानीको न रोक सकता है न प्रवृत्त कर सकता है क्योंकि " प्रबोधनीय एवासौ सुप्तो राजेव बंदिभिः " अर्थात् जिस प्रकार बंदी (भाट) राजाके चरित्रोंका वर्णन करते हैं तिसी प्रकार वेदभी आत्मज्ञानीका बखान करते हैं ॥ ४ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते भूतग्रामे च-
तुर्विधे । विज्ञस्यैव हि सामर्थ्यमि-
च्छानिच्छाविसर्जने ॥ ५ ॥

अन्वय–हि आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते चतुर्विधे भूतग्रामे विज्ञस्य एव इच्छानिच्छाविसर्जने सामर्थ्यं (अस्ति) ॥ ५ ॥

शिष्य शंका करता है कि, ज्ञानी अपनी इच्छाके अनुसार वर्तता है, या दैवेच्छासे वर्तता है ? तिसको गुरु उत्तर देते हैं कि, ब्रह्मासे तृणपर्यंत चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए ब्रह्मांडके विषें इच्छा और अनिच्छा यह दो पदार्थ किसीके दूर करनेसे दूर नहीं होते हैं परंतु ज्ञानीको ऐसो सामर्थ्य है कि, न उसको इच्छा है, न अनिच्छा है ॥ ५ ॥

आत्मानमद्वयंकश्चिज्जानातिजग-
दीश्वरम् । यद्वेत्तितत्सकुरुतेनभयं
तस्यकुत्रचित् ॥ ६ ॥

अन्वयः--कश्चित् जगदीश्वरम् आत्मानम् अद्वयम् जानाति सः यत् वेत्ति तत् कुरुते तस्य कुत्रचित् भयम् न (भवति) ॥ ६ ॥

अब इस वार्ताका वर्णन करते हैं कि, ज्ञानी पुरुष सर्वथा निर्भय होताहै, आत्मज्ञानसे द्वैतप्रपंचको

दूर करनेवाले ज्ञानीको भय नहीं होता है परंतु अद्वितीय आत्मस्वरूपको हजारोंमें कोई एकही जानता है और अद्वितीय आत्मस्वरूपका ज्ञान होनेके अनंतर कोई कर्म करे अथवा न करे तौभी वह इस लोक तथा परलोकके विषे भयको नहीं प्राप्त होता है॥ ६॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां सान्वयभाषाटीकया सहितं शिष्यप्रोक्तानुभवोल्लासपञ्चकं चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ४॥

अथ पंचमं प्रकरणम् ५.

न ते संगोऽस्ति केनापि किं शुद्धस्त्यक्तुमिच्छसि । संघातविलयं कुर्वन्नेवमेव लयं व्रज ॥ १ ॥

अन्वयः--(हे शिष्य !) ते केन अपि सङ्गः न अस्ति शुद्धः (त्वम्) किम् त्यक्तुम् (उपादातुं च) इच्छसि संघातविलयम् कुर्वन् एवम् एव लयम् व्रज ॥ १ ॥

इस प्रकार शिष्यकी परीक्षा लेकर उसको दृढ उपदेश दिया, अब चार श्लोकोंसे गुरु लयका उपदेश करते हैं, हे शिष्य ! तू शुद्धबुद्धस्वरूप है, अंहकारादि किसीकेभी साथ तेरा संबंध नहीं है, सो नित्य शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव तू त्यागनेको और ग्रहणको किसकी इच्छा करता है अर्थात् तेरे त्यागने और ग्रहण करने योग्य कोई पदार्थ नहीं है, तिस कारण संघातका निषेध करता हुआ लयको प्राप्त हो अर्थात् देहादि संपूर्ण वस्तु जड हैं उसका त्याग कर और मिथ्या जान ॥ १ ॥

उदेति भवतो विश्वं वारिधेरिव बुद्बुदः ।
इति ज्ञात्वैकमात्मानमेवमेव लयं व्रज २॥

अन्वयः—(हे शिष्य !) वारिधेः बुद्बुदः इव भवतः विश्वम् उदेति इति एकम् आत्मानम् ज्ञात्वा एवम् एव लयम् व्रज ॥ २ ॥

हे शिष्य ! यह जगत् अपनी भावनासे हुआ है

अर्थात् जिस प्रकार जलसे बुलबुले भिन्न नहीं होते हैं, तिसी प्रकार तुझ (आत्मा) से यह जगत् भिन्न नहीं है, सजातीय विजातीय और स्वगत ये तीन भेद आत्माके विषें नहीं है आत्मा एक है, सो मैंही हूं इस प्रकार जानकर आत्मस्वरूपके विषें लयको प्राप्त हो, (एक मनुष्यजातिके विषें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि अनेक भेद हैं यह सजातीय भेद कहाता है, और मनुष्य, पशु, पक्षी यह जो भिन्न २ जाति हैं. सो विजातीय भेद हैं तथा एक देहके विषें हाथ, चरण, मुख इत्यादि जो भेद हैं सो स्वगतभेद कहाते हैं) ॥ २ ॥

प्रत्यक्षमप्यवस्तुत्वाद्विश्वंनास्त्य-
मलेत्वयि। रज्जुसर्प इव व्यक्तमेव-
मेव लयं व्रज ॥ ३ ॥

अन्वयः--प्रत्यक्षम् अपि व्यक्तम् विश्वम् रज्जुसर्पः इव अवस्तुत्वात् अमले त्वयि न (अस्ति तस्मात्) एवम् एव लयम् व्रज ॥ ३ ॥

तहां शंका होती है कि, जब प्रत्यक्ष हार और सर्प आदिका भेद प्रतीत होता है तो फिर किस प्रकार हार आदिका विलय हो सकता है ? तिसका समाधान करते हैं कि रज्जु अर्थात् डोरेके विषें सर्पकी प्रत्यक्ष प्रतीति होती है परंतु वास्तवमें वह सर्प नहीं होता है, इसी प्रकार यह प्रत्यक्ष स्पष्ट प्रतीत होनेवाला जगत् निर्मल आत्माके विषे नहीं है, इस प्रकारही जानकर आत्मस्वरूपके विषें लीन हो ॥ ३ ॥

समदुःखसुखः पूर्ण आशानैराश्य-
योः समः । समजीवितमृत्युः सन्ने-
वमेव लयं व्रज ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे (शिष्य !) पूर्णः समदुःखसुखः (तथा) आशानैरा-श्ययोः समः सन् एवम् एव लयं व्रज ॥ ४ ॥

हे शिष्य ! तू (आत्मा) आत्मानंदसे परिपूर्ण इस कारणही प्रारब्धसे प्राप्त हुए सुख और दुःखके

विषैं समदृष्टि करनेवाला तथा आशा और निराशाके विषैं समदृष्टि करनेवाला और जीवन तथा मरणको समदृष्टिसे देखता हुआ ब्रह्मदृष्टिरूप लयको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रगीतायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितमाचार्योक्तं लयचतुष्टयं नाम पञ्चमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं प्रकरणम् ६.

आकाशवदनन्तोऽहं घटवत्प्राकृतं जगत् । इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥ १ ॥

अन्वयः--अहम् आकाशवत् अनंतः, प्राकृतम् जगत् घटवत् इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्) तथा एतस्य त्यागः न ग्रहः न लयः (न) १॥

इस प्रकार पंचम प्रकरणमें गुरुने लयमार्गका उपदेश किया, अब शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मा जो अनंतरूप है उसका देहादिके विषैं निवास करना

किस प्रकार घटेगा तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, आत्मा आकाशके समान अनंतरूप है और प्रकृतिका कार्य जगत् घटके समान आत्माका अवच्छेदक और निवास स्थान है अर्थात् जिस प्रकार आकाश घटादिमें व्याप्त होता है तिसी प्रकार आत्मा देहके विषें व्याप्त है, इस प्रकार जो ज्ञान है सो वेदांतसिद्ध और अनुभवसिद्ध है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है तिस कारण उस आत्माका त्याग नहीं है और ग्रहण नहीं है, तथा लय नहीं है ॥ १ ॥

महोदधिरिवाहं स प्रपंचो वीचिसन्निभः । इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥ २ ॥

अन्वयः--सः अहम् महोदधिः इव प्रपञ्चःवीचिसन्निभः इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्) तथा एतस्य त्यागः न ग्रहः न लयः (न) ॥२॥

इस घट और आकाशके दृष्टांतसे देह और आत्माके भेदकी शंका होती है, तहां कहते हैं कि, यह

पूर्वोक्त मैं (आत्मा) समुद्रकी समान हूं और प्रपंच तरंगोंकी समान है, इस प्रकारका ज्ञान अनुभवसिद्ध है, तिस कारण इस आत्माका त्याग ग्रहण और लय होना संभव नहीं है ॥ २ ॥

अहं स शुक्तिसंकाशो रूप्यवद्विश्व-
कल्पना । इति ज्ञानं तथैतस्य न
त्यागो न ग्रहो लयः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सः अहम् शुक्तिसंकाशः, न, विश्वकल्पना रूप्यवत् इति ज्ञानम् तथा एतस्य त्यागः न ग्रहः न लयः (न) ॥ ३ ॥

इस समुद्र और तरंगोंके दृष्टांतसे आत्माके विषें विकारकी शंका होती है इस शिष्यके संदेहका गुरु समाधान करते हैं कि, जिस प्रकार सीपीके विषें रजत कल्पित होता है इसी प्रकार आत्माके विषें यह जगत् कल्पित है, इस प्रकारका वास्तविक ज्ञान होनेपर आत्माका त्याग ग्रहण और लय नहीं हो सकता है ॥३॥

अहं वा सर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथो मयि । इति ज्ञानंतथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥ ४ ॥

अन्वयः--सर्वभूतेषु अहम् अथो वा सर्वभूतानि मयि इति ज्ञानम् (अनुभवसिद्धम्) तथा एतस्य त्यागः न ग्रहः न लयः (न)॥ ४॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, सीपी और रजतका जो दृष्टांत दिखाया तिससे तो आत्माके विषें परिच्छिन्नता अर्थात् एकदेशीपनारूप दोष आता है तहां कहते हैं कि, मैं संपूर्ण प्राणियोंके विषें सत्तारूपसे स्थित रहता हूं इस कारण संपूर्ण प्राणी मुझ अधिष्ठान रूपके विषेंही स्थित हैं, इस प्रकारका ज्ञान वेदान्तशास्त्रके विषें प्रतिपादन किया है, ऐसा ज्ञान होनेपर आत्माका त्याग ग्रहण और लय नहीं होता है ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं शिष्योक्तमुत्तरचतुष्कं नाम षष्ठं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमं प्रकरणम् ७.

मय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्वपोत इ-
तस्ततः। भ्रमति स्वांतवातेन न म-
मास्त्यसहिष्णुता ॥ १ ॥

अन्वयः--अनन्तमहाम्भोधौ मयि स्वान्तवातेन विश्वपोतः इतस्ततः भ्रमति; मम असहिष्णुता न अस्ति ॥ १ ॥

पंचम प्रकरणके विषें गुरुने इस प्रकार वर्णन किया कि लय योगका आश्रय किये विना सांसारिक व्यवहारोंका विक्षेप अवश्य होता है, तिसके उत्तरमें षष्ठ प्रकरणके विषें शिष्यने कहा कि, आत्माके विषें इष्टअनिष्टभाव तिस कारण आत्माका त्याग, ग्रहण लय आदि नहीं होता है, अब इस कथनकाही पांच श्लोकोंसे विवेचन करते हैं कि, मैं चैतन्यमय. अनंत समुद्र हूं और मेरे विषें संसाररूपी नौका मनरूपी वायुके वेगसे चारों ओरको घूमती है तिस संसाररूपी नौकाके भ्रमणसे मेरा मन इस प्रकार चलायमान

नहीं होता है, जिस प्रकार नौकासे समुद्र चलायमान नहीं होता है ॥ १ ॥

मय्यनन्तमहाम्भोधौ जगद्वीचिः स्वभावतः । उदेतु वास्तमायातु न मे वृद्धिर्न च क्षतिः ॥ २ ॥

अन्वयः-अनंतमहाम्भोधौ मयि स्वभावतः जगद्वीचिः उदेतु वा अस्तम् आयातु, मे वृद्धिः न क्षतिः च न ॥ २ ॥

इस प्रकार यह वर्णन किया कि संसारके व्यवहारोंसे आत्माको कोई हानि नहीं होती है और अब यह वर्णन करते हैं कि, संसारकी उत्पत्ति और लयसेभी आत्माकी कोई हानि नहीं होती है, मैं चैतन्यमय अनंतरूप समुद्र हूं, तिस मेरे (आत्माके) विषें स्वभावसे संसाररूपी तरंग उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, तिन संसाररूपी तरंगोंके उत्पन्न होनेसे मेरा कोई लाभ नहीं होता है और नष्ट होनेसे हानि नहीं होती है क्योंकि, मैं सर्वव्यापी हूं इस कारण

मेरी उत्पत्ति नहीं हो सकती है और मैं अनंत हूं इस कारण मेरा लय (नाश) नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

मय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्वं नाम विकल्पना । अतिशांतो निराकार एतदेवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

अन्वयः-अनन्तमहाम्भोधौ मयि विश्वम् विकल्पना नाम (अतः) अहम् अतिशान्तः निराकारः एतत् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ३ ॥

इस कहे हुए समुद्र और तरंगके दृष्टांतसे आत्माके विषें परिणामीपनेकी शंका होती है तिस शंकाकी निवृत्तिके अर्थ कहते हैं कि, अनंत समुद्ररूप जो मैं तिस मेरे विषें जगत् केवल कल्पनामात्र है सत्य नहीं है. इस कारणही मैं शांत कहिये संपूर्ण विकाररहित और निराकार तथा केवलआत्मज्ञानका आश्रित हूं ३

नात्मा भावेषु नो भावस्तत्रानन्ते निरञ्जने । इत्यसक्तोऽस्पृहः शान्त एतदेवाहमास्थितः ॥ ४ ॥

अन्वयः-भावेषु आत्मा न, अनन्ते निरञ्जने तत्र भावः नो इति अहम् असक्तः अस्पृहः शान्तः एतत् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ४ ॥

अब आत्माकी शांतस्वरूपताकाही वर्णन करते हैं कि, देह इंद्रियादि पदार्थोंके विषें आत्मपना अर्थात् सत्यपना नहीं है, क्योंकि देहेंद्रियादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं और देह इंद्रियादिरूप उपाधि आत्माके विषें नहीं है, क्योंकि आत्मा अनंत और निरंजन है, इस कारणही इच्छारहित और शांत तथा तत्त्वज्ञानका आश्रित हूं ॥४॥

अहो चिन्मात्रमेवाहमिंद्रजालोपमं जगत् । अतो मम कथं कुत्र हेयो-पादेयकल्पना ॥ ५ ॥

अन्वयः-अहो अहम् चिन्मात्रम् एव जगत् इन्द्रजालोपमम् अतः मम हेयोपादेयकल्पना कुत्र कथम् (स्यात्) ॥ ५ ॥

आत्मा इच्छादिरहित है इस विषयमें और हेतु कहते हैं कि, अहो मैं अलौकिक चैतन्यमात्र हूं और

जगत् इंद्रजाल कहिये बाजीगरके चरित्रोंकी समान है. इस कारण किसी पदार्थके विषें मेरे ग्रहण करनेकी और त्यागनेकी कल्पना किस प्रकार हो सकती है ? अर्थात् न तो मैं किसी पदार्थको त्यागता हूं और न ग्रहण करता हूं ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितमनुभवपञ्चकविवरणं नाम सप्तमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमं प्रकरणम् ८.

तदा बन्धो यदा चित्तं किञ्चिद्वाञ्छति शोचति । किञ्चिन्मुञ्चति गृह्णाति किञ्चिद्धृष्यति कुप्यति ॥ १ ॥

अन्वय—यदा चित्तम् किञ्चित् वाञ्छति शोचति किञ्चित् मुञ्चति गृह्णाति किञ्चित् हृष्यति कुप्यति तदा बंधः भवति ॥ १ ॥

इस प्रकार छः प्रकरणोंकरके अपने शिष्यकी सर्वथा परीक्षा लेकर, बंधमोक्षकी व्यवस्था वर्णन

करनेके मिषसे गुरु अपने शिष्यके अनुभवकी चार श्लोकोंसे प्रशंसा करते हैं कि, हे शिष्य ! तैंने जो कहा कि, मेरेको (आत्माको) कुछ त्याग करना और ग्रहण करना नहीं है सो सत्य है, क्योंकि, जब चित्त किसी वस्तुका त्याग करता है, किसी वस्तुका ग्रहण करता है, किसी वस्तुसे प्रसन्न होता है, अथवा कोप करता है तबही जीवका बंध होता है ॥ १ ॥

तदा मुक्तिर्यदा चित्तं न वाञ्छति न शोचति । नमुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति न कुप्यति ॥ २ ॥

अन्वयः-यदा चित्तम् न वाञ्छति न शोचति न मुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति न कुप्यति ॥ २ ॥

जब चित्त इच्छा नहीं करता है, शोक नहीं करता है, किसी वस्तुका त्याग नहीं करता है, ग्रहण नहीं करता है, तथा किसी वस्तुकी प्राप्तिसे प्रसन्न नहीं

होता है और कारण होने परभी कोप नहीं करता है तबही जीवकी मुक्ति होती है ॥ २ ॥

तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तं कास्व-
पिदृष्टिषु । तदा मोक्षो यदा चित्त-
मसक्तं सर्वदृष्टिषु ॥ ३ ॥

अन्वयः—यदा चित्तम् कासु अपि दृष्टिषु सक्तम् तदा बन्धः यदा चित्तम् सर्वदृष्टिषु असक्तम् तदा मोक्षः ॥ ३ ॥

इस प्रकार बंध मोक्षका भिन्न २ वर्णन किया अब दोनों इकट्ठा वर्णन करते हैं, जिसका चित्त आत्माभिन्न किसी भी जड पदार्थके विषें आसक्त होता है, तब जीवका बंध होता है और जब चित्त आत्म-भिन्न संपूर्ण जड पदार्थोंके विषे आसक्तिरहित होता है तबही जीवका मोक्ष होता है ॥ ३ ॥

यदा नाहंतदा मोक्षो यदाहं बन्धनं
तदा । मत्वेति हेलया किञ्चिन्मा
गृहाण विमुञ्च मा ॥ ४ ॥

अन्वयः-यदा अहम् न तदा मोक्षः, यदा अहम् तदा बन्धनम् इति मत्वा हेलया किञ्चित् मा गृहाण मा विमुञ्च ॥ ४ ॥

संपूर्ण विषयोंके विषे चित्त आसक्त न होय ऐसी साधनसंपत्ति प्राप्त होनेपरभी अहंकार दूर हुए विना मुक्ति नहीं होती है यही कहते हैं कि, जबतक मैं देह हूं इस प्रकार अभिमान रहता है तबतकही यह संसारबंधन रहता है और जब मैं आत्मा हूं, देह नहीं हूं, इस प्रकारका अभिमान दूर हो जाता है, तब मोक्ष होता है. इस प्रकार जानकर व्यवहार दृष्टिसे न किसी वस्तुको ग्रहण कर न किसी वस्तुका त्याग कर ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तं बन्धमोक्षव्य-वस्था नामाष्टमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

अथ नवमं प्रकरणम् ९.

कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा शान्तानि कस्य वा । एवं ज्ञात्वेह निर्वेदाद्भव- त्यागपरोऽव्रती ॥ १ ॥

अन्वयः—कृताकृते द्वन्द्वानि कस्य कदा वा शान्ता एवम् ज्ञात्वा इह निर्वेदात् त्यागपरः अव्रती भव ॥ १ ॥

ऊपरके प्रकरणके विषें गुरुने कहा कि, " न किसी वस्तुको ग्रहण कर न त्याग कर " तहां शिष्य प्रश्न करता है, त्यागकी क्या रीति है ? तिसके समाधानमें गुरु आठ श्लोकोंसे वैराग्य वर्णन करते हैं कि, कृत और अकृत अर्थात् यह करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये, इत्यादि अभिनिवेश और सुखदुःख, शीत, उष्ण आदि द्वंद्व किसीके कभी शांत हुए हैं ? अर्थात् कभी किसीके निवृत्त नहीं हुए. इस प्रकार जानकर इन कृत अकृत और सुखदुःखादिके विषें विरक्त होनेसे त्याग-

परायण और संपूर्ण पदार्थोंके विषे आग्रहका त्यागनेवाला हो ॥ १ ॥

कस्यापि तात धन्यस्य लोकचे-
ष्टावलोकनात् । जीवितेच्छा बुभु-
क्षाच बुभुत्सोपशमं गताः ॥ २ ॥

अन्वयः-- हे तात ! लोकचेष्टावलोकनात् कस्य अपि धन्यस्य जीवितेच्छा बुभुक्षा बुभुत्सा च उपशमं गताः ॥ २ ॥

चित्तके धर्मोंका त्यागरूप वैराग्य तौ किसीकोही होता है, सबको नहीं, यह वर्णन करते हैं, हे शिष्य ! सहस्रोंमेंसे किसी एक धन्य पुरुषकोही संसारकी उत्पत्ति और नाशरूप चेष्टाके देखनेसे जीवनकी इच्छा और भोगकी इच्छा तथा जाननेकी इच्छा निवृत्त होती है ॥ २ ॥

अनित्यं सर्वमेवेदं तापत्रितयदू-
षितम् । असारं निन्दितं हेयमि-
ति निश्चित्य शाम्यति ॥ ३ ॥

अन्वयः-तापत्रितयदूषितम् इदम् सर्वम् एव अनित्यम् असारम् निन्दितम् हेयम् इति निश्चित्य (ज्ञानी) शाम्यति ॥ ३ ॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, ज्ञानी पुरुषोंकी जो संपूर्ण विषयोंमें आसक्ति नष्ट हो जाती है उसमें क्या कारण है ? तहां कहते हैं कि, यह संपूर्ण जगत् अनित्य है, चैतन्यस्वरूप आत्माकी सत्तासे स्फुरित होता है, वास्तवमें कल्पनामात्र है और आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों दुःखोंसे दूषित हो रहा है अर्थात् तुच्छ है, झूँठा है, ऐसा निश्चय करके ज्ञानी पुरुष उदासीनताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

कोऽसौ कालो वयः किंवा यत्र द्वन्द्वानि नो नृणाम् । तान्युपेक्ष्य यथाप्राप्तवर्ती सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अन्वयः-यत्र नृणाम् द्वन्द्वानि नो (सन्ति) असौ कः कालः किम् वयः तानि उपेक्ष्य यथाप्राप्तवर्ती (जनः) सिद्धिम् अवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

अब यह वर्णन करते हैं, कि सुखदुःखादि द्वंद्व तो प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार अवश्यही प्राप्त होंगे परंतु तिन सुखदुःखादिके विषें इच्छा और अनिच्छाका त्याग करके प्रारब्धकर्मानुसार प्राप्त हुए सुखदुःखादि द्वंद्वोंको भोगता हुआ मुक्तिको प्राप्त होता है ऐसा कौनसा काल है कि, जिसमें मनुष्यको सुखदुःखादि द्वंद्वोंकी प्राप्ति न हो और ऐसी कौनसी अवस्था है कि, जिसमें मनुष्यको सुख दुःख आदि न हो ? अर्थात् जिसमें मनुष्यको सुख दुःखादि नहीं होते हो ऐसा न कोई समय है और न कोई ऐसी अवस्था है. और सर्व कालमें और सब अवस्थाओंमें सुख दुःख तो होतेही हैं ऐसा जानकर तिन सुख दुःखादिके विषें संकल्प विकल्पको त्यागनेवाला पुरुष प्रारब्धकर्मानुसार प्राप्त हुए सुखदुःखादिको आसक्तिरहित भोगकर सिद्धि कहिये मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

नाना मतं महर्षीणां साधूनां योगिनां तथा। दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नः को न शाम्यति मानवः ॥ ८ ॥

अन्वयः--महर्षीणाम् साधूनाम् तथा योगिनाम् नाना मतम् दृष्ट्वा निर्वेदम् आपन्नाः कः मानवः न शाम्याति ॥ ८ ॥

अब इस वार्ताको वर्णन करते हैं कि, तत्त्वज्ञानके सिवाय अन्यत्र किसी विषयमेंभी निष्ठा न करे। ऋषियोंके भिन्न २ रीतिके नाना प्रकारके मत हैं, तिनमें कोई होम करनेका उपदेश करतेहैं, कोई मंत्र जप करनेका उपदेश करते हैं कोई चांद्रायण आदि व्रतोंकी महिमावर्णन करते हैं तिसी प्रकार साधु कहिये भक्तपुरुषोंके भी अनेक भेद और संप्रदाय हैं जैसे कि, शैव शाक्त वैष्णव आदि तथा योगियोंके मतभी अनेक प्रकारके हैं तिसमें कोई अष्टांगयोगकी साधना करते हैं और कोई तत्त्वोंकी गणना करते हैं इस प्रकार भिन्न २ प्रकारके मत होनेके कारण तिन

सबको त्यागकर वैराग्यको प्राप्त होता है ? किन्तु शांतिको प्राप्त होताही ॥ ५ ॥

कृत्वा मूर्तिपरिज्ञानं चैतन्यस्य न किं गुरुः । निर्वेदसमतायुक्त्या य-स्तारयति संसृतेः ॥ ६ ॥

अन्वयः—निर्वेदसमतायुक्त्या चैतन्यस्य मूर्तिपरिज्ञानम् कृत्वा यः न किं गुरुः सः संसृतेः तारयति ॥ ६ ॥

अब यह वर्णन करते हैं कि, कर्मादिक त्याग करके केवल ज्ञाननिष्ठाकाही आश्रय करना चाहिये, निर्वेद कहिये वैराग्य अर्थात् विषयोंके विषें आसक्ति न करना और समता कहिये शत्रुमित्रादि सबके विषें समदृष्टि रखना अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टि करना तथा युक्ति श्रुतियोंके अनुसार शंकाओंका समाधान करना, इनके द्वारा सच्चिदानंदस्वरूपका साक्षात्कार करके फिर कर्ममार्गके विषें गुरुका आश्रय न कर-नेवाला पुरुष अपने आत्माको तथा औरोंकोभी संसारसे तार देता है ॥ ६ ॥

पश्य भूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान् यथार्थतः । तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थो भविष्यसि ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे (शिष्य !) भूतविकारान् यथार्थतः भूतमात्रान् पश्य (एवम्) त्वम् तत्क्षणात् बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्थः भविष्यसि ॥ ७ ॥

चैतन्यस्वरूपके साक्षात्करनेका उपाय कहते हैं कि, हे शिष्य ! भूतविकार कहिये देह इंद्रिय आदिको वास्तवमें जड जो पंचमहाभूत तिनका विकार जान आत्मस्वरूप मत जान यदि गुरु, श्रुति और अनुभवसे ऐसा निश्चय कर लेगा तो तात्कालही संसारबंधनसे मुक्त होकर शरीर आदिसे विलक्षण जो आत्मा तिस आत्मस्वरूपके विषें स्थितिको प्राप्त होयगा, क्योंकि शरीर आदिके विषें आत्माभिन्न जडत्व आदिका ज्ञान होनेपर तिन शरीर आदिका साक्षी जो आत्मा सो शीघ्रही जाना जाता है ॥७॥

वासना एव संसार इति सर्वा विमु-
ञ्च ताः । तत्त्यागो वासनात्यागा-
त्स्थितिरद्य यथा तथा ॥ ८ ॥

अन्वयः–संसारः वासनाः एव इति ताः सर्वाः विमुञ्च, वासना-
त्यागात् तत्त्यागः अद्य स्थितिः तथा यथा ॥ ८ ॥

इस प्रकार आत्मज्ञान होनेपर आत्मज्ञानके
विषें निष्ठा होनेके लिये वासनाके त्याग करनेका
उपदेश करते हैं कि, विषयोंके विषें वासना होनाही
संसार है, इस कारण हे शिष्य ! तिन संपूर्ण वासना-
ओंका त्याग कर वासनाके त्यागसे आत्मानिष्ठा
होनेपर तिस संसारका स्वयं त्याग हो जाता है और
वासनाओंके त्याग होनेपरभी संसारके विषें शरीरकी
स्थिति प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार रहती है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां
भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तं निर्वेदाष्टकं
नाम नवमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अथ दशमं प्रकरणं १०.

विहाय वैरिणं काममर्थं चानर्थसङ्कुलम् । धर्ममप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानादरं कुरु ॥ १ ॥

अन्वयः—वैरिणम् कामम् अनर्थसंकुलम् अर्थम् च (तथा) एतयोः हेतुम् धर्मम् अपि विहाय सर्वत्र अनादरम् कुरु ॥ १ ॥

पूर्वमें विषयोंके विनाभी संतोषरूपसे वैराग्यका वर्णन किया, अब विषयतृष्णाके त्यागका गुरु उपदेश करते हैं, हे शिष्य ! ज्ञानका शत्रु जो काम तिसका त्याग कर और जिसके पैदा करनेमें रक्षा करनेमें तथा खर्च करनेमें दुःख होता है ऐसे सर्वथा दुःखोंसे भरे हुए अर्थ कहिये धनका त्याग कर, तथा काम और अर्थ दोनोंका हेतु जो धर्म तिसकाभी त्याग कर और तदनंतर धर्म कामरूप त्रिवर्गके हेतु जो सकाम कर्म तिनके विषें आसक्तिका त्याग कर ॥ १ ॥

स्वप्नेन्द्रजालवत्पश्य दिनानि त्रीणि पंच वा । मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः ॥ २ ॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) त्रीणि पंच वा दिनानि (स्थायिन्यः) मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः स्वप्नेन्द्रजालवत पश्य ॥ २ ॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, स्त्री, पुत्रादि और अनेक प्रकारके सुख देनेवाले जो कर्म तिनका किस प्रकार त्याग हो सकता है तहां गुरु कहते हैं कि, हे शिष्य ! तीन अथवा पांच दिन रहनेवाले मित्र, क्षेत्र, धन, स्थान, स्त्री और कुटुंबी आदि संपत्तियोंको स्वप्न और इंद्रजालकी समान अनित्य जान ॥ २ ॥

यत्र यत्र भवेत्तृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै । प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भव ॥ ३ ॥

अन्वयः-वै यत्र यत्र तृष्णा भवेत् तत्र संसारम् विद्धि (तस्मात्) प्रौढवैराग्यम् आश्रित्य वीततृष्णः (सन्) सुखी भव ॥ ३ ॥

अब यह वर्णन करते हैं कि, संपूर्ण काम्य कर्मोंमें अनादर करना रूप वैराग्यही मोक्षरूप पुरुषार्थका कारण है, जहां २ विषयोंके विषें तृष्णा होती है तहांही संसार जान, क्योंकि विषयोंकी तृष्णाही कर्मोंके द्वारा संसारका हेतु होती है, तिस कारण दृढ वैराग्यका अवलम्बन करके, अप्राप्त विषयोंमें इच्छारहित होकर आत्मज्ञानकी निष्ठा करके सुखी हो ॥ ३ ॥

तृष्णामात्रात्मको बन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते। भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तितुष्टिर्मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥

अन्वयः—बन्धः तृष्णामात्रात्मकः तन्नाशः मोक्षः उच्यते, भवासंसक्तिमात्रेण मुहुर्मुहुः प्राप्तितुष्टिः (स्यात्) ॥ ४ ॥

उपरोक्त विषयकोही अन्य रीतिसे कहते हैं, हे शिष्य! तृष्णामात्रही बडा भारी बंधन है और तिस तृष्णामात्रका त्यागही मोक्ष कहाता है, क्योंकि

संसारके विषें आसक्तिका त्याग करके वारंवार आत्मज्ञानसे उत्पन्न हुआ संतोषही मोक्ष कहाता है ॥ ४ ॥

त्वमेकश्चेतनः शुद्धो जडं विश्वमसत्तथा। अविद्यापि न किञ्चित्सा का बुभुत्सा तथापि ते ॥ ५ ॥

अन्वयः- त्वम् एकः चेतनः शुद्धः (असि) विश्वम् जडम् तथा असत् (अस्ति) अविद्या अपि किंचित् न तथा ते सा बुभुत्सा अपि का ॥ ५ ॥

तहां शंका होती है कि, यदि तृष्णामात्रही बंधन है तब तो आत्मप्राप्तिकी तृष्णाभी बंधन हो जायगी ? तहां कहते हैं कि, इस संसारमें आत्मा, जगत् और अविद्या ये तीनही पदार्थ हैं तिन तीनोंमें आत्मा (तू) तौ अद्वितीय, चेतन और शुद्ध है. तिन चैतन्यस्वरूप पूर्णरूप आत्माके जाननेकी इच्छा तृष्णा बंधन नहीं होती है, क्योंकि आत्माभिन्न जड पदार्थोंके विषें इच्छा करनाही तृष्णा कहातीहै क्योंकि जड

अनित्य होनेके कारण जगत्के विषें इच्छा करना वंध्यापुत्रकी समान मिथ्या है, उस इच्छासे किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं होती है, किसी प्रकार मायाके जाननेकी इच्छा (तृष्णा) करनाभी निरर्थकही है, क्योंकि माया सत्रूप करके अथवा असत्रूप करके कहनेमें नहीं आती है ॥ ५ ॥

राज्यं सुताः कलत्राणि शरीराणि सुखानि च । संसक्तस्यापि नष्टानि तव जन्मनि जन्मनि ॥ ६ ॥

अन्वयः--संसक्तस्य अपि तव राज्यम् सुताः कलत्राणि शरीराणि सुखानि च जन्मनि जन्मानि नष्टानि ॥ ६ ॥

अब संसारकी जडता और अनित्यताको दिखाते हैं कि, हे शिष्य ! राज्य, पुत्र, स्त्री, शरीर और सुख इनके विषें तैंने अत्यंतही प्रीति की तबभी जन्म-जन्ममें नष्ट हो गये, इस कारण संसार अनित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६ ॥

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा । एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्तमभून्मनः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अर्थेन कामेन सुकृतेन कर्मणा अपि अलम्, (यतः) संसारकान्तारे एभ्यः मनः विश्रान्तम् न अभूत् ॥ ७ ॥

अब धर्मअर्थकामरूप त्रिवर्गकी इच्छाका निषेध करते हैं हे शिष्य ! धनके विषें कामके विषें और सकाम कर्मोंके विषेंभी कामना न करके अपने आनन्दस्वरूपके विषें परिपूर्ण रहे, क्योंकि, संसाररूपी दुर्गममार्गके विषें भ्रमता हुआ मन इन धर्म-अर्थ-कामसे विश्रामको कदापि नहीं प्राप्त होयगा तो कदापि संसारबंधनका नाश नहीं होयगा ॥ ७ ॥

कृतं न कति जन्मानि कायेन मनसा गिरा । दुःखमायासदं कर्म तदद्याप्युपरम्यताम् ॥ ८ ॥

अन्वयः-(हे शिष्य !) आयासदम् दुःखम् कर्म कायेन मनसा गिरा कति जन्मानि न कृतम् तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥ ८ ॥

अब क्रियामात्राके त्यागका उपदेश करतेहैं कि, हे शिष्य ! महाक्लेश और दुःखोंका देनेवाला कर्म काय, मन और वाणीसे कितने जन्मोंपर्यंत नहीं किया ? अर्थात् अनेक जन्मोंमें किया, और तिन जन्मजन्ममें किये हुए कर्मोंसे तैंने अनर्थही पाया, तिस कारण अब सो तिन कर्मोंका त्याग कर ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं गुरुप्रोक्तमुपशमाष्टकं नाम दशमं प्रकरणं समाप्तम् ॥१०॥

अथैकादशमं प्रकरणम् ११.

भावाभावविकारश्च स्वभावादिति निश्चयी । निर्विकारो गतक्लेशः सुखेनैवोपशाम्यति ॥ १ ॥

अन्वयः—भावाभावविकारः स्वभावात् (जायते) इति निश्चयी (पुरुषः) निर्विकारः गतक्लेशः च (सन्) सुखेन एव उपशाम्यति ॥ १ ॥

पूर्वोक्त शांति ज्ञानसेही होती है अन्यथा नहीं होती है; इसका बोध करनेके निमित्त आठ श्लोकोंसे ज्ञानका वर्णन करते हुए प्रथम ज्ञानके साधनोंका वर्णन करते हैं, किसी वस्तुका भाव और किसी वस्तु का अभाव यह जो विकार है सो तो स्वभाव कहिये माया और पूर्व संस्कारके अनुसार होता है, आत्माके सकाशसे नहीं होता है ऐसा निश्चय जिस पुरुषको होता है वह पुरुष अनायाससेही शांतिको प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥

ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी । अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापि न सज्जते ॥ २ ॥

अन्वयः—इह सर्वनिर्माता ईश्वरः अन्यः न इति निश्चयी (पुरुषः) अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः (सन्) क्व अपि न सज्जते ॥ २ ॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, माया तो जड है उसके सकाशसे भावाभावरूप संसारकी उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, संपूर्ण जगत् रचनेवाला एक ईश्वर है, अन्य जीव जगत्का रचनेवाला नहीं है, क्योंकि जीव ईश्वरके वशीभूत हैं, इस प्रकार निश्चय करने-वाला पुरुष ऐसे निश्चयके प्रभावसेही दूर हो गई है सब प्रकारकी तृष्णा जिसकी ऐसा और शांत कहिये निश्चल चित्त होकर कहींभी आसक्त नहीं होता है ॥ २ ॥

आपदः सम्पदः काले दैवादेवेति
निश्चयी । तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं
न वांछति न शोचति ॥ ३ ॥

अन्वयः—काले आपदः सम्पदः (च) दैवात् एव (भवन्ति) इति निश्चयी तृप्तः (पुरुषः) नित्यम् स्वस्थेन्द्रियः (सन्) न वाञ्छति न शोचति ॥ ३ ॥

तहां शंका होती है कि; यदि ईश्वरही संसारको रचनेवाला है तो किन्हीं पुरुषोंको दरिद्री करता है, किन्हींको धनी करता है और किन्हींको सुखी करता है तथा किन्हींको दुःखी करता है. इस कारण ईश्वरके विषें वैषम्य और नैर्घृण्य दोष आवेगा तहां कहते हैं कि, किसी समयमें आपात्तियें और किसी समयमें संपात्तियें, ये अपने प्रारब्धसे होती हैं, इस कारण ईश्वरके विषें वैषम्य और नैर्घृण्यदोष नहीं लग सकता. इस प्रकार निश्चय करनेवालापुरुष सब प्रकार-की तृष्णाओंसे रहित और विषयोंसे चलायमान नहीं हुई हैं इंद्रियें जिसकी ऐसा होकर अप्राप्त वस्तुकी इच्छा नहीं करता है और नष्ट हुई वस्तुका शोक नहीं करता है ॥ ३ ॥

सुखदुःखे जन्ममृत्यू दैवादेवेति निश्चयी । साध्यादर्शी निरायासः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः—सुखदुःखे, जन्ममृत्यू दैवात् एव (भवन्ति) इति निश्चयी; साध्यादर्शी निरायासः (पुरुषः कर्माणि) कुर्वन् अपि न लिप्यते॥४॥

तहां शिष्य शंका करता है कि, हे गुरो ! पूर्वोक्त निश्चययुक्त पुरुषभी कर्म करता हुआ देखनेमें आता है सो कैसे हो सकता है ? तिसका गुरु समाधान करते हैं कि, कर्मके फलरूप सुखदुःख और जन्ममृत्यु प्रारब्धके अनुसार होते हैं, इस प्रकार निश्चयवाला पुरुष ऐसी दृष्टि नहीं करता है कि, अमुक कर्म मुझे करना चाहिये और इस कारणही कर्म करनेमें परिश्रम नहीं करता है और प्रारब्धकर्मानुसार कर्म करके लिप्तभी नहीं होता है अर्थात् पापपुण्यरूप फलका भोगनेवाला नहीं होता है, क्योंकि उस पुरुषको मैं कर्ता हूं, ऐसा अभिमान नहीं होता है ॥ ४ ॥

चिन्तया जायते दुःखं नान्यथेहेति निश्चयी । तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः ॥ ५ ॥

अन्वयः- इह दुःखम् चिन्तया जायते अन्यथा न इति निश्चयी (पुरुषः) तया हीनः (सन्) सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः भवति ॥ ५ ॥

तहां शंका होती है कि, यह कैसे हो सकता है कि, कर्म करकेभी पापपुण्यरूप फलका भोक्ता न होता है ? तहां कहते हैं, इस संसारके विषें दुःख-मात्र चिन्तासे उत्पन्न होता है, किसी अन्य कारणसे नहीं होताहै, इस प्रकार निश्चयवाला चिन्तारहित पुरुष शान्ति तथा सुखको प्राप्त होता है, और उस पुरुषकी संपूर्ण विषयोंसे अभिलाषा दूर हो जाती है ॥ ५ ॥

नाहं देहो न मे देहो बोधोऽहमिति निश्चयी । कैवल्यमिव संप्राप्तो न स्मरत्यकृतं कृतम् ॥ ६ ॥

अन्वयः--अहम् देहः न, मे देहः न, (किन्तु) अहम् बोधः इति निश्चयी (पुरुषः) कैवल्यम् संप्राप्तः इव कृतम् अकृतम् न स्मरति॥६॥

पूर्वोक्त साधनोंसे युक्त ज्ञानियोंकी दशाको निरू-पण करते हैं कि-मैं देह नहीं हूं तथा मेरा देह नहीं है

किंतु मैं ज्ञानस्वरूप हूं, इस प्रकार जिस पुरुषका निश्चय हो जाता है, वह पुरुष ज्ञानके द्वारा अभिमानका नाश होनेके कारण मुक्तिदशाको प्राप्त हुए पुरुषकी समान कर्म अकर्मका स्मरण नहीं करता है अर्थात् उसके विषें लिप्त नहीं होता है ॥ ६ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमहमेवेति निश्चयी । निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः ॥ ७ ॥

अन्वयः--आब्रह्मस्तम्बपर्यंतम् अहम् एव इति निश्चयी (पुरुषः) निर्विकल्पः शुचिः (तथा) शान्तः (सन्) प्राप्ताप्राप्तविनिर्वृतः (भवति) ॥ ७ ॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यंत संपूर्ण जगत् मैंही हूं, इस प्रकार निश्चयवाले पुरुषके संकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं, विषयासक्तरूप मलसे रहित हो जाता है, उस पुरुषका महापवित्र जो आत्मा सो प्राप्त और अप्राप्तवस्तुकी इच्छासे रहित होकर परम संतोषको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

नानाश्चर्यमिदं विश्वं न किंचिदिति निश्चयी । निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिति शाम्यति ॥८॥

अन्वयः-नानाश्चर्यम् इदम् विश्वम् किंचित् न इति निश्चयी (पुरुषः) निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः (सन्) न किञ्चित् इति शाम्यति ॥ ८ ॥

तहां शंका होती है कि, ज्ञानीके संकल्प विकल्प स्वयंही किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कारज्ञान होनेपर जगत् कल्पित प्रतीत होने लगता है और नानारूपवाला जगत्भी ज्ञानको आत्मस्वरूपही प्रतीत होताहै कि, यह सम्पूर्ण जगत् मेरी (आत्माकी) सत्तासेही स्फुरित होता है ऐसा निश्चय होतेही ज्ञानीकी संपूर्ण वासना नष्ट हो जाती है और चैतन्यस्वरूप हो जाता है और उसको कोई व्यवहार शेष नहीं रहता है, इस कारण शांतिको प्राप्त हो जाता है और उस ज्ञानीकी कार्यकारणरूप उपाधि

नष्ट हो जाती है, क्योंकि ज्ञानीको संपूर्ण जगत् स्व-प्नकी समान भासने लगता है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं ज्ञानाष्टकं नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अथ द्वादशं प्रकरणम् १२.

कायकृत्यासहः पूर्वं ततो वाग्विस्त-
रासहः । अथ चिंतासहस्तस्मादे-
वमेवाहमास्थितः ॥ १ ॥

अन्वयः--पूर्वम् कायकृत्यासहः, ततः वाग्विस्तरासहः, अथ चिन्तासहः, तस्मात् अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ १ ॥

पूर्व प्रकरणके विषें ज्ञानाष्टकसे वर्णन किये हुए विषयकोही शिष्य अपने विषें दिखाता है, शिष्य कह-ता है कि, हे गुरो ! प्रथम मैंने आपकी कृपासे का-यिक क्रियाओंका त्याग किया, तदनंतर वाणीके जप-

रूप कर्मका त्याग किया, इस कारणही मनके संक-ल्पविकल्परूप कर्मका त्याग किया इस प्रकार मैं सब प्रकारके व्यवहारोंका त्याग करके केवल चैतन्यस्व-रूप आत्माका आश्रय करके स्थित हूं ॥ १ ॥

प्रीत्यभावेन शब्दादेरदृश्यत्वेन चा-त्मनः। विक्षेपैकाग्रहृदय एवमे-वाहमास्थितः ॥ २ ॥

अन्वयः—शब्दादेः प्रीत्यभावेन, आत्मनः च अदृश्यत्वेन विक्षेपैका-ग्रहृदयः अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ २ ॥

उपरोक्त तीन प्रकारके कायिक आदि व्यापारोंके त्यागनेमें कारण दिखाते हैं कि नाशवान् फलके उत्पन्न करनेवाले शब्दादि विषयोंके विषें प्रीति न होनेसे और आत्माके अदृश्य होनेसे मेरा हृदय तीनों प्रकारके विक्षेपोंसे रहित और एकाग्र है, अर्थात् नाशवान् स्वर्गादि फल देनेवाले जप आदिके विषें प्रीति न होनेसे तो मेरे विषें जपरूप विक्षेप नहीं है

और आत्मा अदृश्य है इस कारण आत्मा ध्यानका विषय नहीं है इस कारण चिंतारूप मनका विक्षेपभी मेरे विषें नहीं है इस कारण मैं आत्मस्वरूप करके स्थित हूं ॥ २ ॥

समाध्यासादिविक्षिप्तौ व्यवहारः समाधये । एवं विलोक्य नियम-मेवमेवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

अन्वयः-समाध्यासादिविक्षिप्तौ (सत्याम्) समाधये व्यवहारः (भवति); एवम् नियमम् विलोक्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ३ ॥

तहां शंका होती है कि, किसी प्रकारका विक्षेप न होनेपरभी समाधिके अर्थ तो व्यवहार करनाही पड़ेगा तिसका समाधान करते हैं कि, यदि कर्तृत्व भोक्तृत्वका अध्यासरूप विक्षेप होता अर्थात् मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं इत्यादि मिथ्या अध्यासरूप विक्षेप यदि होता तो उसकी निवृत्तिके अर्थ समाधिके

निमित्त व्यवहार करना पडता है; यदि ऐसा अध्यास नहीं होता तो समाधिके निमित्त व्यवहार नहीं करना पडता है, इस प्रकारके नियमको देखकर शुद्ध आत्मज्ञानका आश्रय लेनेवाले मेरे विषें अध्यास न होनेके कारण समाधिशून्य मैं आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ ३ ॥

हेयोपादेयविरहादेवं हर्षविषादयोः ।
अभावादद्य हे ब्रह्मन्नेवमेवाहमा-
स्थितः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् ! हेयोपादेयविरहात् एवम् हर्षविषादयोः अभावात् अद्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥ ४ ॥

शिष्य कहता है कि हे गुरो ! मैं तो पूर्णस्वरूप हूं इस कारण किसका त्याग करूं ? और किसका ग्रहण करूं ? अर्थात् न मेरेको कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्य है, इसी प्रकार

मेरेको किसी प्रकारका हर्ष शोकभी नहीं है, मैं तो इस समय केवल आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं॥४॥

आश्रमानाश्रमं ध्यानं चित्तस्वी-
कृतवर्जनम्। विकल्पं मम वीक्ष्यै-
तैरेवमेवाहमास्थितः॥ ५॥

अन्वयः-आश्रमानाश्रमम् ध्यानम् चित्तस्वीकृतवर्जनम् एतैः एव मम विकल्पम् वीक्ष्य अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि)॥ ५॥

मैं मन और बुद्धिसे परे हूं, इस कारण मेरे विषें वर्णाश्रमके विषें विहित ध्यान कर्म और संकल्प, विकल्प नहीं हैं, मैं सबका साक्षी हूं ऐसा विचार कर आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं॥ ५॥

कर्मानुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्त-
था। बुद्ध्वा सम्यगिदं तत्त्वमेवमे-
वाहमास्थितः॥ ६॥

अन्वयः-यथा अज्ञानात् कर्मानुष्ठानम् तथा एव उपरमः (भवति), इदम् तत्त्वम् सम्यक् बुद्ध्वा अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि)॥ ६॥

जिस प्रकारका कर्मानुष्ठान (कर्म करना) अज्ञानसेही होता है तिस प्रकार कर्मका त्यागभी अज्ञानसेही होता है, क्योंकि आत्माके विषें त्यागना और ग्रहण करना कुछभी नहीं बनता है, इस तत्त्वको यथार्थ रीतिसे जानकर मैं आत्मस्वरूपके विषेंही स्थित हूं ॥ ६ ॥

अचिन्त्यं चिन्त्यमानोऽपि चिन्तारूपं भजत्यसौ । त्यक्त्वा तद्भावनं तस्मादेवमेवाहमास्थितः ॥ ७ ॥

अन्वयः—अचिन्त्यम् चिन्त्यमानः अपि असौ चिन्तारूपम् भजति, तस्मात् तद्भावनम् त्यक्त्वा अहम् एवम् एव आस्थितः (अस्मि) ॥७॥

अचिंत्य जो ब्रह्म है तिसको चिंतन करता हुआ भी यह पुरुष आत्मचिंतामय रूपको प्राप्त होता है, तिस कारण ब्रह्मके चिंतनका त्याग करके मैं आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ ७ ॥

एवमेव कृतं येन स कृतार्थो भवे-
दसौ । एवमेव स्वभावो यः स
कृतार्थो भवेदसौ ॥ ८ ॥

अन्वयः–येन एवम् कृतम् सः असौ कृतार्थः भवेत्, यः एवम् एव स्वभावः सः असौ कृतार्थः भवेत् ॥ ८ ॥

जिस पुरुषने इस प्रकार आत्मस्वरूपको साधनोंके द्वारा सर्वक्रियारहित किया है वह कृतार्थ है और जो विना साधनोंकेही स्वभावसे क्रियारहित शुद्ध आत्मस्वरूपके ज्ञानवाला है, उसके कृतार्थ होनेमें तो कहनाही क्या है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां
भाषाटीकया सहितमेवमेवाष्टकं नाम द्वादशं
प्रकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशं प्रकरणम् १३.

अकिञ्चनभवं स्वास्थ्यं कौपीनत्वेऽ
ऽपि दुर्लभम् । त्यागादाने विहा-
यास्मादहमासे यथासुखम् ॥ १ ॥

अन्वयः—कौपीनत्वे अपि अकिञ्चनभवम् स्वास्थ्यम् दुर्लभम् अस्मात् अहम् त्यागादाने बिहाय यथासुखम् आसे ॥ १ ॥

अब जीवन्मुक्ति अवस्थाका फल जो परम सुख तिसका वर्णन करते हैं, सपूर्ण विषयोंके विषें आसक्तिका त्याग करनेसे उत्पन्न होनेवाली चित्तकी स्थिरता कौपीनमात्रमें आसक्ति करनेसेभी नहीं प्राप्त होती है; इस कारण मैं त्याग और ग्रहणके विषें आसक्तिका त्याग करके सर्वदा सुखरूपसे स्थित हूं ॥ १ ॥

कुत्रापि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्रापि खिद्यते । मनःकुत्रापि तत्त्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितः सुखम् ॥ २ ॥

अन्वयः—कुत्रे अपि कायस्य खेदः (भवति) कुत्र अपि जिह्वा (खिद्यते) कुत्र अपि मनः (खिद्यते) (अतः) तत् त्यक्त्वा सुखम् पुरुषार्थे स्थितः (अस्मि) ॥ २ ॥

यदि व्रत तीर्थादि सेवन करे तो शरीरको खेद होता है और यदि गीताभागवतादि स्तोत्रोंका पाठ किया जाय तो जिह्वाको खेद होता है, और यदि

ध्यान समाधि की जाय तो मनको खेद होता है, इस कारण मैं इन तीनों दुःखोंका त्याग करके सुखपूर्वक आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ २ ॥

कृतं किमपि नैव स्यादिति सचि-
न्त्य तत्त्वतः । यदा यत्कर्त्तुमायाति
तत्कृत्वासे यथासुखम् ॥ ३ ॥

अन्वयः-कृतम् किम् अपि तत्त्वतः न एव स्यात् इति सचिन्त्य यदा यत् कर्तुम् आयाति तत् कृत्वा यथासुखम् आसे ॥ ३ ॥

वादी शंका करता है कि, वाणी मन और शरीर इन तीन तीनोंके व्यापारका त्याग होनेसे तो तत्काल शरीरका नाश हो जायगा, क्योंकि इस प्रकारके त्यागसे अन्नजलकाभी त्याग हो जायगा, फिर शरीर किस प्रकार रह सकेगा ? तिसका समाधान करतेहैं, कि शरीर इंद्रियादिसे किया हुआ कोई कर्म आ-त्माका नहीं हो सकता है, इस प्रकार विचार कर जो

कर्म करना पडताहै उस कर्मको अहंकाररहित करके मैं आत्मस्वरूपके विषें सुखपूर्वक स्थित हूं ॥ ३ ॥

कर्मनैष्कर्म्यनिर्बन्धभावा देहस्थ-
योगिनः । संयोगायोगविरहादह-
मासे यथासुखम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—कर्मनैष्कर्म्यनिर्बन्धभावाः देहस्थयोगिनः (भवन्ति) अहम् (तु) संयोगायोगविरहात् यथासुखम् आसे ॥ ४ ॥

तहां वादी शंका करता है कि या कर्ममार्गमें निष्ठा करे या निष्कर्म मार्गमेंही निष्ठा करे एकसाथ दोनों मार्गोंपर चलना किस प्रकार हो सकेगा ? तहां कहते हैं, कर्म और निष्कर्म तौ देहका अभिमान करनेवाले योगीकोही होते हैं और मैं तो देहका संयोग वियोग दोनोंका त्याग कर सुखरूप स्थित हूं ॥४॥

अर्थानर्थौ न मे स्थित्या गत्या न
शयनेन वा । तिष्ठन् गच्छन् स्व-
पन् तस्मादहमासे यथासुखम् ॥ ५ ॥

अन्वयः-स्थित्या गत्या (च) मे अर्थानर्थौ न शयनेन (च) न तस्मात् तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् यथासुखम् आसे ॥ ९ ॥

लौकिक व्यवहारके विषेंभी मेरेको अभिमान नहीं है, क्योंकि स्थिति, गति तथा शयन आदिसे मेरा कोई हानि, लाभ नहीं होता है इस कारण मैं खडा रहूं वा चलता रहूं अथवा शयन करता रहूं तो उसमें मेरी आसक्ति नहीं होती है, क्योंकि मैं तो सुखपूर्वक आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ ९ ॥

स्वपतो नास्ति मे हानिः सिद्धिर्य-
त्नवतो न वा । नाशोल्लासौ विहा-
यास्मादहमासे यथासुखम् ॥ ६ ॥

अन्वयः-मे स्वपतः हानिः न अस्ति यत्नवतः वा सिद्धिः न (अस्ति) अस्मात् नाशोल्लासौ विहाय अहम् यथासुखम् आसे ॥६॥

संपूर्ण प्रयत्नोंको त्याग करके शयन करूं तो मेरी किसी प्रकारकी हानि नहीं है और अनेक प्रकारके उद्यम करूं तो मेरा किसी प्रकारका लाभ नहीं है, इस कारण त्याग और संग्रहको छोडकर मैं सुखपूर्वक आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ ६ ॥

सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्य भूरिशः । शुभाशुभे विहायास्मादहमासे यथासुखम् ॥ ७ ॥

अन्वयः--भावेषु भूरिशः सुखादिरूपानियमम् आलोक्य अस्मात् अहम् शुभाशुभे विहाय यथासुखम् आसे ॥ ७ ॥

भाव जो जन्म तिनके विषें अनेक स्थानोंमें सुख-दुःखादि धर्मोंकी अनित्यताको देखकर और इस कारणही शुभ और अशुभ कर्मोंको त्यागकर मैं सुखपूर्वक आत्मस्वरूपके विषें स्थित हूं ॥ ७ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं यथासुखसप्तकं नाम त्रयोदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशं प्रकरणम् १४.

प्रकृत्या शून्यचित्तो यः प्रमादाद्भावभावनः । निद्रितो बोधित इव क्षीणसंस्मरणो हि सः ॥ १ ॥

अन्वयः—प्रकृत्या शून्यचित्तः प्रमादात् भावभावनः यः निद्रितः इव बोधितः (भवति) सः हि क्षीणसंसरणः ॥ १ ॥

अब शिष्य अपनी सुखरूप अवस्थाका वर्णन करता है कि, अपने स्वभावसे तो चित्तके धर्मोंसे रहित है और बुद्धिके द्वारा प्रारब्धकर्मोंके वशीभूत होकर अज्ञानके कारण संकल्पविकल्पकी भावना करता है, जिस प्रकार कोई पुरुष सुखपूर्वक शयन करता होय उसको कोई पुरुष जगाकर काम करावे तो वह काम उस पुरुषके मनकी इच्छाके अनुसार नहीं होता है, किंतु अन्य पुरुषके वशीभूत होकर कार्य करता है वास्तवमें उसका चित्त कार्यके संकल्पविकल्पसे रहित होताहै तिसी प्रकार प्रारब्धकर्मानुसार संकल्पविकल्प करनेवाले पुरुषका चित्त विषयोंसे शान्त अर्थात् संसाररहित होता है ॥ १ ॥

क्व धनानि क्व मित्राणि क्व मे विषयदस्यवः । क्व शास्त्रं क्व च विज्ञानं यदा मे गलिता स्पृहा ॥ २ ॥

अन्वयः—यदा मे स्पृहा गलिता (तदा) मे धनानि क, मित्राणि क; विषयदस्यवः क, शास्त्रम् क, विज्ञानम् च क ॥ २ ॥

विषयवासनासे रहित पूर्णरूप जो मैं हूं तिस मेरी यदि इच्छा नष्ट हो गई तो मेरे धन कहां, मित्रवर्ग कहां, विषयरूप लुटेरे कहां और शास्त्र कहां अर्थात् इनमेंसे किसी वस्तुमेंभी मेरी आसक्ति नहीं रहतीहै।२।

विज्ञाते साक्षिपुरुषे परमात्मनि चे-
श्वरे । नैराश्ये बंधमोक्षे च न
चिन्ता मुक्तये मम ॥ ३ ॥

अन्वयः—साक्षिपुरुषे परमात्मनि ईश्वरे च विज्ञाते बन्धमोक्षे च नैराश्ये (सति) मम मुक्तये चिन्ता न ॥ ३ ॥

देह, इंद्रिय और अंतःकरणके साक्षी सर्वशक्तिमान् परमात्माका ज्ञान होनेपर पुरुषको बंध तथा मोक्षकी आशा नहीं होती है और मुक्तिके लियेभी चिंता नहीं होती है ॥ ३ ॥

अन्तर्विकल्पशून्यस्य बहिःस्वच्छ-न्दचारिणः। भ्रान्तस्येव दशास्ता-स्तास्तादृशा एव जानते ॥ ४ ॥

अन्वयः—अन्तर्विकल्पशून्यस्य भ्रान्तस्य इव बहिःस्वच्छन्दचारिणः (ज्ञानिनः) ताः ताः दशाः तादृशाः एव जानते ॥ ४ ॥

अंतःकरणके विषें संकल्पविकल्पसे रहित और बाहर भ्रांत (पागल) पुरुषकी समान स्वच्छंद होकर विचरनेवाले ज्ञानीकी तिन तिन दशाओंको तैसेही ज्ञानी पुरुष जानते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं शांतिचतुष्टयं नाम चतुर्दशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशं प्रकरणम् १५.

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबु-द्धिमान्। आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति ॥ १ ॥

अन्वयः-सत्त्वबुद्धिमान् (शिष्यः), यथा तथा उपदेशेन कृतार्थः (भवति); परः आजीवम् जिज्ञासुः अपि तत्र विमुह्यति ॥ १ ॥

यद्यपि गुरुने शिष्यके अर्थ पहिले आत्मतत्त्वका उपदेश किया है तथा शास्त्रमें ऐसा नियम है कि, कठिनसे जानने योग्य होनेके कारण शिष्योंके अर्थ आत्मतत्त्वका वारंवार उपदेश करना चाहिये और छान्दोग्य उपनिषद्के विषें गुरुने शिष्यके अर्थ वारंवार आत्मतत्त्वका उपदेश किया है, इस कारण गुरु फिरभी शिष्यके अर्थ आत्मतत्त्वका उपदेश करते हुए प्रथम ज्ञानके अधिकारी और अनधिकारीका वर्णन करते हैं कि, जिसकी बुद्धि सात्त्विकी होती है वह शिष्य यथाकथंचित् उपदेश श्रवण करकेभी कृतार्थ हो जाता है, इस कारणही सत्ययुगके विषें केवल एक अक्षर ब्रह्म ॐकार तिसके ही उपदेशमा-त्रसे अनेक शिष्य कृतार्थ होगये अर्थात् ज्ञानको प्राप्त

होगये और जिनकी तामसी बुद्धि होती है, उनको

मरणपर्यंत उपदेश करो तबभी उनको आत्मस्वरू-पका ज्ञान नहीं होता है, किंतु महामोहमें पडे रहते हैं, प्रह्लादजीका पुत्र विरोचन दैत्य था उसको ब्रह्मा-जीने अनेक वार उपदेश किया. तोभी वह महामोह-युक्तही रहा क्योंकि वह तामसी बुद्धिवाला था ॥ १ ॥

मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयि-
को रसः । एतावदेव विज्ञानं यथे-
च्छसि तथा कुरु ॥ २ ॥

अन्वयः—विषयवैरस्यम् मोक्षः, वैषयिकः रसः बन्धः विज्ञानम् एतावत् एव; यथा इच्छसि तथा कुरु ॥ २ ॥

अब बंध और मोक्षका स्वरूप दिखाते हैं कि, विषयोंके विषें आसक्ति न करना यही मोक्ष है और विषयोंमें प्रीति करना यही बंधन है, इतनाही गुरु और वेदांतके वाक्योंसे जानने योग्य है, इस कारण हे शिष्य ! जैसी तेरी रुचि हो वैसा कर ॥ २ ॥

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगं जनं मूकजडा-
लसम् । करोति तत्त्वबोधोऽयमत-
स्त्यक्तो बुभुक्षुभिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—अयम् तत्त्वबोधः वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगम् जनम् मूकजडालसम् करोति अतः बुभुक्षुभिः त्यक्तः ॥ ३ ॥

अब इस बातका वर्णन करते हैं कि, तत्त्वज्ञानके सिवाय किसी अन्यसे विषयासक्तिका नाश नहीं हो सकता है, यह प्रसिद्ध तत्त्वज्ञान वाचाल पुरुषको मूक (गूंगा) कर देता है पण्डितको जड कर देता है, परम उद्योगी पुरुषकोभी आलसी कर देता है क्योंकि मनके प्रत्यगात्माके विषें लगानेसे ज्ञानीकी वाणी मन और शरीरकी वृत्तियें नष्ट हो जाती हैं इस कारणही विषयभोगकी लालसा करनेवाले पुरुषोंने आत्मज्ञानका अनादर कर रखा है ॥ ३ ॥

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्त्ता न
वा भवान् । चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी
निरपेक्षः सुखं चर ॥४॥

अन्वयः—हे शिष्य! त्वम् देहः न, (तथा) ते देहः न, भवान् कर्ता वा भोक्ता न, (यतः) (भवान्) चिद्रूपः सदा साक्षी असि (अतः) निरपेक्षः (सन्) सुखं चर ॥ ४ ॥

अब तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ उपदेश करते हैं कि, हे शिष्य! तू देहरूप नहीं है तथा तेरा देह नहीं है क्योंकि तू चैतन्यरूप है तिस प्रकार तू कर्मोंका करनेवाला तथा कर्मफलका भोगनेवाला नहीं है, क्योंकि कर्म करना और फल भोगना यह मन और बुद्धिके धर्म हैं और तू तो मन और बुद्धिसे भिन्न साक्षीमात्र इस प्रकार है जिस प्रकार घटका देखनेवाला घटसे भिन्न होता है, इस कारण हे शिष्य! देहके संबधी जो स्त्रीपुत्रादि तिनसे उदासीन होकर सुखपूर्वक विचर ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाचन। निर्विकल्पोऽसि बोधा-

त्मा निर्विकारः सुखं चर ॥ ५ ॥

अन्वयः--रागद्वेषौ मनोधर्मौ (भवतः) मनः ते (सम्बंधि), कदाचन न (भवति), (यतः त्वम्) निर्विकल्पः बोधात्मा असि (अतः) निर्विकारः (सन्) सुखं चर ॥ ५ ॥

हे शिष्य ! राग और द्वेष आदि मनके धर्म हैं तेरे नहीं हैं और तेरा मनके साथ कदापि संबंध नहीं है, क्यों कि तू संकल्पविकल्परहित ज्ञानस्वरूप है, इस कारण तू रागादि विकाररहित होकर सुखपूर्वक विचर ॥ ५ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । विज्ञाय निरहंकारो निर्ममस्त्वं सुखी भव ॥ ६ ॥

अन्वयः--सर्वभूतेषु च आत्मानम् सर्वभूतानि च आत्मनि विज्ञाय त्वम् निरहंकारः निर्ममः (सन्) सुखी भव ॥ ६ ॥

आत्मा संपूर्ण प्राणियोंके विषें कारणरूपसे स्थित है, और संपूर्ण प्राणी आत्माके विषें अध्यस्त हैं इस प्रकार जानकर ममता और अहंकाररहित सुखपूर्वक स्थित हो ॥ ६ ॥

विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरंगा इव सा-
गरे । तत्त्वमेव न सन्देहश्चिन्मूर्त्ते
विज्वरो भव ॥ ७ ॥

अन्वयः—यत्र इदम् विश्वम् सागरे तरङ्गा इव स्फुरति, तत् त्वम् एव (अत्र) सन्देहः न (अतः) हे चिन्मूर्ते ! (त्वम्) विज्वरः भव ॥ ७ ॥

जिस प्रकार समुद्रके विषें जो तरंग हैं वे कल्पित और अनित्य हैं तिसी प्रकार जिस आत्माके विषें यह विश्व कल्पित है वह तूही है, इसमें कुछ संदेह नहीं है, इस कारण हे चैतन्यरूप शिष्य ! तू संपूर्ण सन्ता-परहित हो ॥ ७ ॥

श्रद्धस्व तात श्रद्धस्व नात्र मोहं
कुरुष्व भोः । ज्ञानस्वरूपो भगवा-
नात्मा त्वं प्रकृतेः परः । ८ ।

अन्वयः—भोः तात ! श्रद्धस्व श्रद्धस्व, अत्र मोहम् न कुरुष्व, (यतः) त्वम् ज्ञानस्वरूपः भगवान् प्रकृतेः परः आत्मा (असि) ॥ ८ ॥

हे तात ! गुरु और वेदान्तके वचनोंपर विश्वास कर, विश्वास कर, आत्माकी चेतन स्वरूपताके विषयमें मोह कहिये संशय विपर्य स्वरूप अज्ञान मत कर क्योंकि तू ज्ञानस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, प्रकृतिसे परे आत्मस्वरूप है ॥ ८ ॥

गुणैः संवेष्टितो देहस्तिष्ठत्यायाति याति च । आत्मा न गन्ता नागन्ता किमेनमनुशोचसि ॥ ९ ॥

अन्वयः--गुणैः संवेष्टितः देहः तिष्ठति आयाति याति च आत्मा न गन्ता न आगन्ता (अतः) एनम् किम् अनुशोचसि ॥ ९ ॥

गुण कहिये इंद्रिय आदिसे वेष्टित देहही संसारके विषें रहता है, आता है और जाता है और आत्मा तौ न जाता न आता है, इस कारण मैं जाऊंगा मेरा मरण होगा इत्यादि देहके धर्मोंसे आत्माके विषें शोक मत कर, क्योंकि आत्मा तो सर्वव्यापी और नित्यस्वरूप है ॥ ९ ॥

देहस्तिष्ठतु कल्पान्तं गच्छत्वद्यैव वा पुनः। क्व वृद्धिः क्व च वा हानि-स्तव चिन्मात्ररूपिणः ॥ १० ॥

अन्वयः—देहः कल्पान्तम् तिष्ठतु वा पुनः अद्य एव गच्छतु चिन्मात्ररूपिणः तव क्व हानिः वा क्व च वृद्धिः ॥ १० ॥

हे शिष्य ! यह देह कल्पपर्यंत स्थित रहे, अथवा अबही नष्ट हो जाय तौ उससे तेरी न हानि होती है और न वृद्धि होती है, क्योंकि तू तो केवल चैतन्य-स्वरूप है ॥ १० ॥

त्वय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः। उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः ॥ ११ ॥

अन्वयः—अनन्तमहाम्भोधौ त्वयि स्वभावतः विश्ववीचिः उदेतु वा अस्तम् आयातु ते वृद्धिः न वा क्षतिः न ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! तू चैतन्य अनंतस्वरूप है और जिस प्रकार समुद्रके विषें तरंग उत्पन्न होती हैं और लीन

हो जाती हैं, तिस प्रकार तेरे (आत्माके) विषें स्व-भावसे संसारकी उत्पत्ति और लय हो जाता है, तिससे तेरी किसी प्रकारकी हानि अथवा वृद्धि नहीं है॥ ११ ॥

तात चिन्मात्ररूपोऽसि न ते भिन्न-मिदं जगत् । अतः कस्य कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे तात ! (त्वम्) चिन्मात्ररूपः असि, इदम् जगत् ते भिन्नम् न, अतः हेयोपादेयकल्पना कस्य कुत्र कथम् (स्यात्)॥ १२॥

हे शिष्य ! तू चैतन्यमात्रस्वरूप है, यह जगत् तुझसे भिन्न नहीं है इस कारण त्यागना और ग्रहण करना कहां बन सकता है और किसका हो सकता है और किसमें हो सकता है ॥ १२ ॥

एकस्मिन्नव्यये शान्ते चिदाकाशेऽ-मले त्वयि । कुतो जन्म कुतो कर्म कुतोऽहङ्कारएवच १३

अन्वयः--एकस्मिन् अव्यये शान्ते चिदाकाशे अमले त्वयि जन्म कुतः, कर्म कुतः, अहङ्कारः च एव कुतः ॥ १३ ॥

हे शिष्य ! तू अविनाशी, एक, शांत, चैतन्याकाशस्वरूप और निर्मलाकाशस्वरूप है, इस कारण तेरा जन्म नहीं होता है तथा तेरे विषें अहंकार होना-भी नहीं घट सकता है, क्योंकि कोई द्वितीय वस्तु होय तो अहंकार होता है, तथा तेरे विषें जन्म होना-भी नहीं बन सकता है क्योंकि अहंकारके विना कर्म नहीं होता है इस कारण तू शुद्धस्वरूप है ॥ १३ ॥

यत्त्वं पश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभाससे । किं पृथक् भासते स्वर्णात्कटकांगदनूपुरम् ॥ १४ ॥

अन्वयः-- यत् त्वम् पश्यसि तत्र त्वम् एव एकः प्रतिभाससे कटकाङ्गदनूपुरम् किम् स्वर्णात् पृथक् भासते ॥ १४ ॥

जिस प्रकार कटक, बाजूबंद और नूपुर आदि आभूषणोंके विषें एक सुवर्णही भासता है, तैसे

प्रकार जिस २ कार्यको तू देखता है तिस २ कार्यके विषें एक कारणस्वरूप तूही (आत्मा ही) भासता है ॥ १४ ॥

अयं सोऽहमयं नाहं विभागमिति सन्त्यज । सर्वमात्मेति निश्चित्य निःसंकल्पः सुखी भव ॥ १५ ॥

अन्वयः—सः अयम् अहम्, अयम् अहम् न इति विभागम् संत्यज, (तथा) सर्वम् आत्मा इति निश्चित्य निःसंकल्पः (सन्) सुखी भव ॥ १५ ॥

यह जो संपूर्ण देह आदि पदार्थ हैं तिनका मैं साक्षी हूं और मैं देह, इंद्रिय आदिरूप नहीं हूं, अथवा यह मैं हूं और यह मैं नहीं हूं, इस भेदका त्याग कर और संपूर्ण जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय करके संपूर्ण संकल्प विकल्पोंको त्यागकर सुखी हो ॥ १५ ॥

तवैवाज्ञानतो विश्वं त्वमेकः परमार्थतः । त्वत्तोऽन्यो नास्ति संसारी नासंसारी च कश्चन ॥ १६ ॥

अन्वयः–विश्वम् तव अज्ञानतः एव (भवति), परमार्थतः. त्वम् एकः (एव अतः) संसारी त्वत्तः अन्यः न अस्ति, असंसारी च कश्चन (त्वत्तः अन्यः) न (अस्ति) ॥ १६ ॥

हे शिष्य! तेरे अज्ञानसेही विश्व भासता है, वास्तवमें संसार कोई नहीं है, परमार्थस्वरूप अद्वितीय तू एकही है, इस कारणही तुझसे अन्य कोई संसारी अथवा असंसारी नहीं है ॥ १६ ॥

भ्रांतिमात्रमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चयी। निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किंचिदिव शाम्यति ॥ १७ ॥

अन्वयः–इदम् विश्वम् भ्रांतिमात्रम् किञ्चित् न इति निश्चयी (पुरुषः) निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः (सन्) न किञ्चित् इव शाम्यति ॥ १७ ॥

यह विश्व भ्रांतिमात्रसे कल्पित है, वास्तवमें किंचिन्मात्रभी सत्य नहीं है, इस प्रकार जिसको निश्चय हुआ है वह पुरुष वासनारहित और प्रकाशस्वरूप होकर केवल चैतन्यस्वरूपके विषें शान्तिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

एक एव भवाम्भोधावासीदस्ति भविष्यति । न ते बंधोऽस्ति मोक्षो वा कृतकृत्यः सुखं चर ॥ १८॥

अन्वयः--भवाम्भोधौ एकः एव आसीत् अस्ति भविष्यति, (अतः) ते बन्धः वा मोक्षः न अस्ति (अतः त्वम्) कृतकृत्यः (सन्) सुखं चर ॥ १८ ॥

भूत भविष्यत् और वर्तमानरूप त्रिकालमेंभी इस संसारसमुद्रके विषें तूही था और तूही है तथा तूही होगा अर्थात् इस संसारके विषें सदा एक तूही रहा है, इस कारण तेरा बंध और मोक्ष नहीं है, सो कृतार्थ हुआ तू सुखपूर्वक विचर ॥ १८ ॥

मा संकल्पविकल्पाभ्यां चित्तं क्षोभय चिन्मय । उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानन्दविग्रहे ॥ १९ ॥

अन्वयः--(हे शिष्य !) चिन्मय ! संकल्पविकल्पाभ्याम् चित्तम् मा क्षोभय उपशाम्य आनन्दविग्रहे स्वात्मनि सुखम् तिष्ठ ॥ १९ ॥

हे शिष्य ! तू चैतन्यस्वरूप है, संकल्प और विकल्पोंसे चित्तको चलायमान मत कर, किंतु चित्तको संकल्पविकल्पोंसे शांत करके आनंदरूप आत्मस्वरूपके विषें सुखपूर्वक स्थित हो ॥ १९ ॥

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किंचिद्धृदि
धारय। आत्मा त्वं मुक्त एवासि
किं विमृश्य करिष्यसि ॥ २० ॥

अन्वयः–सर्वत्र एव ध्यानम् त्यज, हृदि किञ्चित् अपि मा धारय आत्मा त्वम् मुक्तः एव (अतः) विमृश्य किम् करिष्यासि ॥ २० ॥

हे शिष्य ! सर्वत्रही ध्यानका त्याग कर कुछभी संकल्प विकल्प हृदयके विषें धारण मत कर, क्योंकि आत्मरूप तू सदा मुक्तही है, फिर विचार (ध्यान) करके और क्या फल प्राप्त करेगा ॥ २० ॥

इति श्रीमद्दत्तात्रेयमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं तत्त्वोपदेशविंशतिकं नाम पञ्चदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

अथ षोडशं प्रकरणम् १६.

आचक्ष्व शृणु वा तात नानाशा-
स्त्राण्यनेकशः। तथापि न तव स्वा-
स्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ १ ॥

अन्वयः—हे तात ! नानाशास्त्राणि अनेकशः आचक्ष्व वा शृणु तथापि सर्वविस्मरणात् ऋते तव स्वास्थ्यम् न स्यात् ॥ १ ॥

तत्त्वज्ञानके उपदेशसे जगत्को आत्मस्वरूपसे देखना और तृष्णाका नाश करनाही मुक्ति कहाती है, यह विषय वर्णन करते हैं, हे शिष्य ! तू नाना प्रकारके शास्त्रोंको अनेक बार अन्य पुरुषोंके अर्थ उपदेश कर अथवा अनेक बार श्रवण कर परंतु सबको भूले विना अर्थात् संपूर्ण वस्तुके भेदका त्याग किये विना स्वस्थता अर्थात् मुक्ति कदापि नहीं होगी किंतु संपूर्ण वस्तुओंमें भेददृष्टिका त्याग करनेसेही मोक्ष होगा. तहां शिष्य शंका करता है कि, सुषुप्ति अवस्थाके विषे किसी वस्तुकाभी भान नहीं होता

है इस कारण सुषुप्ति अवस्थामें संपूर्ण प्राणियोंका मोक्ष हो जाना चाहिये इस शंकाका गुरु समाधान करते हैं कि, सुषुप्तिमें संपूर्ण वस्तुओंका भान तो नहीं रहता है परंतु एक अज्ञानका भान तो रहता है, इस कारण मोक्ष नहीं होता है और जीवन्मुक्तको तो अज्ञानसहित जगन्मात्राका ज्ञान नहीं रहता है, इस कारण उसकी मुक्ति हुईही समझना चाहिये ॥ १ ॥

भोगं कर्म समाधिं वा कुरु विज्ञ तथापि ते । चित्तं निरस्तसर्वाशमत्यर्थं रोचयिष्यति ॥ २ ॥

अन्वयः–हे विज्ञ ! (त्वम्) भोगम् कर्म वा समाधिम् कुरु तथापि ते चित्तम् अत्यर्थम् निरस्तसर्वाशम् रोचयिष्याति ॥ २ ॥

हे शिष्य ! तू ज्ञानसंपन्न होकर विषयभोग कर अथवा सकाम कर्म कर अथवा समाधिको कर तथापि संपूर्ण वस्तुओंके विस्मरणसे सब प्रकारकी आ-

शासे रहित तेरा चित्त आत्मस्वरूपके विषेंही अधि-
क रुचिको उत्पन्न करेगा ॥ २ ॥

आयासात्सकलो दुःखी नैनं जा-
नाति कश्चन ॥ अनेनैवोपदेशेन
धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम् ॥ ३ ॥

अन्वयः--सकलः आयासात् दुःखी (भवति) (परन्तु) एनम् क-
श्चन न जानाति; अनेन उपदेशेन एव धन्यः निर्वृतिम् प्राप्नोति ॥ ३ ॥

प्राणिमात्र विषयके परिश्रमसे दुःखी होते है परंतु
कोई इस वार्ताको नहीं जानता । क्योंकि विषयानंदके
विषें निमग्न होता है, जो भाग्यवान् पुरुष होता है वह
सद्गुरुसे इस उपदेशको ग्रहण करके परम सुखको
प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मे-
षयोरपि ॥ तस्यालस्यधुरीणस्य
सुखं नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४ ॥

अन्वयः--यः तु निमेषोन्मेषयोः अपि व्यापारे खिद्यते आलस्यधुरीणस्य तस्य (एव) सुखम् (भवति), अन्यस्य कस्यचित् न ॥ ४॥

जो पुरुष नेत्रोंके निमेष उन्मेषके व्यापारमें अर्थात् नेत्रोंके खोलने मूंदनेमेंभी परिश्रम मानकर दुःखित होता है इस परम आलसीकोही अर्थात् उस निष्क्रिय पुरुषकोही परम सुख मिलता है, अन्य किसीकोही नहीं ॥ ४ ॥

इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तं यदा मनः । धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षं तदा भवेत् ॥ ५ ॥

अन्वयः--इदं कृतम्, इदम् न (कृतम्), इति द्वन्द्वैः यदा मनः मुक्तम् भवति । तदा धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षम् भवेत् ॥ ५ ॥

जिसके मनका द्वैतभाव नष्ट हो जाय अर्थात् यह कार्य करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये यह विधिनिषेधरूपी द्वन्द्व जिसके मनसे दूर हो जायँ वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंमेंभी इच्छा

न करे, क्योंकि वह पुरुष जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

विरक्तो विषयद्वेष्टा रागी विषय-
लोलुपः । ग्रहमोक्षविहीनस्तु न
विरक्तो न रागवान् ॥ ९ ॥

अन्वयः--विरक्तः विषयद्वेष्टा भवति, रागी विषयलोलुपः भवति, ग्रह-मोक्षविहीनः तु न विरक्तः भवति, न रागवान् (भवति) ॥ ९ ॥

जो पुरुष विषयसे द्वेष करता है वह विरक्त कहाता है और जो विषयोंमें अतिलालसा करता है वह रागी (कामुक) कहाता है, परंतु जो ग्रहण और मोक्षसे रहित ज्ञानी होता है, वह न विषयोंसे द्वेष करता है, और न विषयोंसे प्रीति करता है अर्थात् प्रारब्ध-योगानुसार जो प्राप्त होय उसका त्याग नहीं करता है और अप्राप्त वस्तुके मिलनेकी इच्छा नहीं करता है इस कारण जीवन्मुक्त पुरुष विरक्त और रागी दोनोंसे विलक्षण होता है ॥ ९ ॥

हेयोपादेयता तावत्संसारविटपां कुरः । स्पृहा जीवति यावद्वै निर्विचारदशास्पदम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—निर्विचारदशास्पदम् स्पृहा यावत् जीवति तावत् वै हेयोपादेयता संसारविटपांकुरः (भवति) ॥ ७ ॥

तहां शंका होती है कि, ज्ञानियोंके विषें तो त्याग और ग्रहणका व्यवहार देखनेमें आता है तहां कहते हैं कि—जिस समयपर्यंत अज्ञानदशाके निवास करनेका स्थानरूप इच्छा रहती है तिस समयपर्यंतही पुरुषका ग्रहण करना और त्यागनारूप संसाररूपी वृक्षका अंकुर रहता है और ज्ञानियोंका तो इच्छा न होनेके कारण त्यागना और ग्रहण करना देखने मात्र होते हैं ॥ ७ ॥

प्रवृत्तौ जायते रागो निवृत्तौ द्वेष एव हि । निर्द्वन्द्वो बालवद्धीमानेवमेव व्यवस्थितः ॥ ८ ॥

अन्वयः–हि प्रवृत्तौ रागः, निवृत्तौ एव द्वेषः जायते (अतः) धीमान् बालवत् निर्द्वन्द्वः (सन्) एवम् एव व्यवस्थितः भवेत् ॥ ८ ॥

यदि विषयोंमें प्रीति करे तौ प्रीति दिनपर दिन बढती जाती है और विषयोंसे द्वेषपूर्वक निवृत्त होय तो दिनपर दिन विषयोंमें द्वेष होता जाता है; इस कारण ज्ञानी पुरुष शुभ और अशुभके विचाररहित जो बालक तिसकी समान रागद्वेषरहित होकर संगपूर्वक जो विषयोंमें प्रवृत्ति करना और द्वेषपूर्वक जो विषयोंसे निवृत्त होना इन दोनोंसे रहित होकर रहे और प्रारब्धकर्मानुसार जो प्राप्त होय उसमें प्रवृत्त होय और अप्राप्तिकी इच्छा न करे ॥ ८ ॥

हातुमिच्छति संसारं रागी दुःख-
जिहासया । वीतरागो हि निर्मुक्त-
स्तस्मिन्नपि न खिद्यति ॥९॥

अन्वयः–रागी दुःखजिहासया संसारम् हातुम् इच्छति, हि वीतरागः निर्मुक्तः (सन्) तस्मिन् अपि न खिद्यति ॥ ९ ॥

जो विषयासक्त पुरुष है वह अत्यंत दुःख भोग-नेके अनंतर दुःखोंके दूर होनेकी इच्छा करके संसा-रको त्याग करनेकी इच्छा करता है और जो वैरा-ग्यवान् पुरुष है वह दुःखोंसे रहित हुआ संसारमें रह-करभी खेदको नहीं प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा । न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ ॥१०॥

अन्वयः–यस्य मोक्षे अपि अभिमानः तथा देहे अपि ममता असौ न च ज्ञानी न वा योगी (किन्तु) केवलम् दुःखभाक् ॥ १० ॥

जिस पुरुषको ऐसा अभिमान है कि, मैं मुक्त हूं, त्यागी हूँ, मेरा शरीर उपवास आदि अनेक प्रकारके कष्ट सहनेमें समर्थ है और जिसका देहके विषें ममत्व है, वह पुरुष न ज्ञानी है, न योगी है किंतु केवल दुःखी है, क्योंकि उसका अभिमान और ममता दूर नहीं हुए हैं ॥ १० ॥

हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजो-ऽपि वा । तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ११ ॥

अन्वयः—यदि हरः वा हरिः (अथवा) कमलजः अपि ते उपदेष्टा (स्यात्) तथापि सर्वविस्मरणात् ऋते तव स्वास्थ्यम् न स्यात् ॥ ११ ॥

हे शिष्य ! साक्षात् सदाशिव तथा विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी ये तीनों महासमर्थभी तेरेको उपदेश करें तौभी संपूर्ण प्राकृत, अनित्य वस्तुओंकी विस्मृति विना तेरा चित्त शांतिको प्राप्त नहीं होयगा और जीवन्मुक्तदशाका सुख प्राप्त नहीं होयगा ॥ ११ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं विशेषोपदेशं नाम षोडशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशं प्रकरणं १७.

तेन ज्ञानफलं प्राप्तं योगाभ्यासफलं तथा । तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेकाकी रमते तु यः ॥ १ ॥

अन्वयः—यः तु तृप्तः स्वच्छेंद्रियः (सन्) नित्यम् एकाकी रमते; तेन ज्ञानफलं तथा योगाभ्यासफलम् प्राप्तम् ॥ १ ॥

अब अन्य पुरुषोंकीभी ज्ञानमें प्रवृत्ति होनेके अर्थ तत्त्वज्ञान फलका निरूपण करनेकी इच्छा करते हुए गुरु प्रथम तत्त्वज्ञानकी दशाका निरूपण करते हैं जो पुरुष इंद्रियोंको विषयोंसे हटाकर और अपने स्वरूपमेंही तृप्त होकर विषयसंयोगके विना इकला-ही सदा आत्माके विषें रमण करता है, उस पुरुष-नेही ज्ञानका तथा योगका फल पाया है ॥ १ ॥

न कदाचिज्जगत्यस्मिंस्तत्त्वज्ञो हन्त खिद्यति । यत एकेन तेनेदं पूर्णं ब्रह्मा-ण्डमण्डलम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हन्त ! तत्त्वज्ञः कदाचित् अस्मिन् जगति न खिद्यति यतः एकेन इदं ब्रह्माण्डमंडलम् पूर्णम् ॥ २ ॥

हे शिष्य ! इस संसारके विषें आत्मतत्त्वज्ञानी कदापि खेदको नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि तिस इकलेसेही यह ब्रह्माण्डमंडल पूर्ण है, सो दूसरेके न होनेसे खेद किस प्रकार हो सकता है सोई श्रुतिमेंभी कहा है " द्वितीयाद्वै भयं भवति " ॥ २ ॥

न जातु विषयाः केऽपि स्वारामं हर्षयन्त्यमी । सल्लकीपल्लवप्रीतमिवेभं निम्बपल्लवाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सल्लकीपल्लवप्रीतम् इभं निम्बपल्लवाः इव अमी के अपि विषयाः स्वारामं जातु न हर्षयन्ति ॥ ३ ॥

जो निरंतर आत्माके विषें रमता है, वह आत्माराम कहाता है, तिस आत्माराम पुरुषको जगत्‌के कोई विषय क्या प्रसन्न कर सकते हैं. जिस प्रकार

एक महामदोन्मत्त हस्ती वनमें हजार हस्तियोंके झुं-

उसमें विहार करता है और परम मधुरस्वादवाली सल्ल-
कीनामक लताके कोमल पत्तोंका प्रेमपूर्वक भक्षण
करता है, और कडुवे नीमके पत्तोंसे प्रसन्न नहीं होता
है, तिसी प्रकार ज्ञानीभी परम मधुर आत्माका स्वाद
लेता है और विषयोंके सुखोंको परम कडुआ जान-
कर त्याग देता है अर्थात् उनकी ओर दृष्टिभी नहीं
देता है ॥ ३ ॥

यस्तु भोगेषु भुक्तेषु न भवत्यधिवा-
सिता । अभुक्तेषु निराकांक्षी तादृशो
भवदुर्लभः ॥ ४ ॥

अन्वयः–यः तु भुक्तेषु अधिवासिता न भवति; (तथा) अभुक्तेषु
निराकांक्षी (भवति) तादृशः (पुरुषः) भवदुर्लभः ॥ ४ ॥

जिसकी भोगे हुए विषयोंमें आसक्ति नहीं होती है
और नहीं भोगे हुए विषयोंमें अभिलाषा नहीं होती
है, ऐसा पुरुष संसारमें दुर्लभ है अर्थात् करोडोंमें
एक आदमी होता है ॥ ४ ॥

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते । भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलो हि महाशयः ॥ ५ ॥

अन्वयः–इह संसारे बुभुक्षुः मुमुक्षुः अपि दृश्यते हि भोगमोक्षनिराकांक्षी महाशयः विरलः ॥ ५ ॥

इस संसारमें विषयभोगकी अभिलाषा करनेवाले-भी बहुत देखनेमें आते हैं और मोक्षकी इच्छा करने-वालेभी बहुत देखनेमें आते हैं परंतु विषयभोग और मोक्ष दोनोंकी इच्छा न करनेवाला तथा पूर्णब्रह्मके विषें अंतःकरण लगानेवाला विरलाही होता है, सोई श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भगवद्गीताके विषें कहा है कि "यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः" ॥ ५ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे तथा । कस्याप्युदारचित्तस्य हेयोपादेयता न हि ॥ ६ ॥

अन्वयः-धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते तथा मरणे कस्य अपि उदारचित्तस्य हि हेयोपादेयता न ॥ ६ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार परम फल हैं, इनके विषें संपूर्ण प्राणियोंका अंतःकरण बंधा है तथा संपूर्ण प्राणियोंको जन्ममरणका भय रहता है, परन्तु ज्ञानी पुरुषका मन धर्मादिके विषें नहीं बंधता है और जो ज्ञानी तिन धर्मादिकको सुखरूप जानकर ग्रहण नहीं करता है और दुःखरूप जानकर त्यागता नहीं है; तथा जीवनमरणसे अपनी कुछ वृद्धि और हानि नहीं समझता है ऐसा ज्ञानी कोई विरलाही होता है ॥ ६ ॥

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषस्त-
स्य च स्थितौ। यथाजीविकया त-
स्माद्धन्य आस्ते यथासुखम् ॥ ७ ॥

अन्वयः-(यस्य) विश्वविलये वाञ्छा न, तस्य स्थितौ च द्वेषः न (अस्ति) तस्मात् धन्यः (सः) यथाजीविकया यथासुखम् आस्ते ॥

जो ज्ञानी है, उसको इस विश्वके नाशकी इच्छा नहीं होती है तथा तिस विश्वकी स्थितिसे द्वेष नहीं होता है, क्योंकि वह ज्ञानी तो जानता है कि, सदा सर्वत्र एक ब्रह्मही प्रकाश कर रहा है और प्रारब्ध-कर्मानुसार देहको धारण करता है तथा सदा सुख-रूप रहता है ऐसा ज्ञानी पुरुष धन्य है ॥ ७ ॥

कृतार्थोऽनेन ज्ञानेनेत्येवं गलितधीः कृती। पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम् ॥ ८ ॥

अन्वयः--अनेन ज्ञानेन (अहम्) कृतार्थः इति एवम् गलितधीः कृती पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् यथासुखम् आस्ते ॥ ८ ॥

इस "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यके ज्ञानसे मैं कृतार्थ होगया हूं ऐसा निश्चय होनेसे देहादिके विषें जिसकी आत्मबुद्धि नष्ट हो गई है, ऐसा ज्ञानी देखता हुआ, श्रवण करता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ तथा भक्षण करता हुआभी सुखपूर्वक-

ही स्थित होता है अर्थात् मैं ज्ञानसे कृतार्थ होग-या ऐसी बुद्धिके कारण, बाह्य इंद्रियोंका व्यापार होनेपरभी मूर्खकी समान ज्ञानीको खेद नहीं होताहै।८।

शून्या दृष्टिर्वृथा चेष्टा विकलानीन्द्रियाणि च। न स्पृहा न विरक्तिर्वा क्षीणसंसारसागरे ॥ ९ ॥

अन्वयः—क्षीणसंसारसागरे (पुरुषे) दृष्टिः शून्या, चेष्टा वृथा, इन्द्रियाणि च विकलानि, स्पृहा न वा विरक्तिः न ॥ ९ ॥

जिस ज्ञानीका संसारसागर क्षीण हो जाता है उसको विषयभोगकी इच्छा नहीं होती है और विषयोंसे विरक्तिभी नहीं होती है क्योंकि ज्ञानीकी दृष्टि कहिये मनका व्यापार शून्य कहिये संकल्पविकल्परहित होता है और चेष्टा कहिये शरीरका व्यापार वृथा कहिये फलकी इच्छासे रहित होता है तथा नेत्र आदि इंद्रियें विकल कहिये समीपमें आये हुएभी विषयोंको यथार्थ रूपसे न जाननेवाली होती हैं कोई

भगवद्गीताके विषें कहाभी है कि " यस्मिन् जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः " ॥ ९ ॥

न जागर्त्ति न निद्राति नोन्मीलति न मीलति । अहो परदशा कापि वर्त्तते मुक्तचेतसः ॥ १० ॥

अन्वयः—न जागर्त्ति न निद्राति न उन्मीलति न मीलति अहो मुक्तचेतसः का अपि परदशा वर्त्तते ॥ १० ॥

न जागता है, न शयन करता है, न नेत्रोंके पलकोंको खोलता है, न मीचता है अर्थात् संपूर्ण विषयोंको ब्रह्मरूप देखता है, इस कारण आश्चर्य है कि, मुक्त है चित्त जिसका ऐसे ज्ञानीकी कोई परम उत्कृष्ट दशा है ॥ १० ॥

सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः। समस्तवासनामुक्तोमुक्तः सर्वत्र राजते ॥ ११ ॥

अन्वयः-मुक्तः सर्वत्र स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः (च) दृश्यते; (तथा) समस्तवासनामुक्तः (सन्) सर्वत्र राजते ॥ ११ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष सुख दुःखादि सर्वत्र स्वस्थ चित्त रहनेवाला और शत्रु मित्र आदि सबके विषें निर्मल अंतःकरणवाला (समदर्शी) दीखता है और संपूर्ण वासनाओंसे रहित होकर सब अवस्थाओंके विषें आत्मस्वरूपके विषें विराजमान होता है ॥ ११ ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्न-
न्गृह्णन्वदन्व्रजन्। ईहितानीहितैर्मु-
क्तो मुक्त एव महाशयः ॥ १२ ॥

अन्वयः-पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गृह्णन् वदन् व्रजन् (अपि) ईहितानीहितैः मुक्तः महाशयः मुक्तः एव ॥ १२ ॥

देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, ग्रहण करता हुआ, भोजन करता हुआ, कथन करता हुआ तथा गमन करता हुआभी इच्छा और द्वेषसे रहित ब्रह्मके विषें चित्त लगानेवाला मुक्तही है ॥ १२ ॥

न निंदति न च स्तौति न हृष्यति न कुप्यति । न ददाति न गृह्णाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः ॥ १३ ॥

अन्वयः—मुक्तः न निन्दति, न स्तौति, न हृष्यति, न कुप्यति, न ददाति, न च गृह्णाति, (किन्तु) सर्वत्र नीरसः (भवति) ॥ १३ ॥

जो जीवन्मुक्त ज्ञानी है वह किसी वस्तुकी न निंदा करता है न प्रशंसा करता है, सुखसे प्रसन्न और दुःखसे कोपयुक्त नहीं होता है तथा किसीको न कुछ देता है न कुछ ग्रहण करता है, क्योंकि वह जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष सर्वत्र प्रीतिरहित होता है ॥ १३ ॥

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वा समुपस्थितम् । अविह्वलमनाःस्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सानुरागाम् स्त्रियं वा समुपस्थितम् मृत्युम् दृष्ट्वा अविह्वलमनाः स्वस्थः महाशयः मुक्तः एव ॥ १४ ॥

परम प्रेम करनेवाली नवयौवना स्त्रीको देखकर अथवा समीपमें आये महाविकरालमूर्ति मृत्युको देखकर जिसका मन चलायमान नहीं होता है और धैर्ययुक्त रहता है वह आत्मस्वरूपके विषें स्थित ज्ञानी मुक्तही है ॥ १४ ॥

सुखे दुःखे नरे नार्यां सम्पत्सु च
विपत्सुच । विशेषो नैव धीरस्य
सर्वत्र समदर्शिनः ॥ १५ ॥

अन्वयः—सुखे, दुःखे, नरे नार्याम्, सम्पत्सु च विपत्सु च धीरस्य सर्वत्र समदर्शिनः विशेषः न एव ॥ १५ ॥

संपूर्ण वस्तुओंके विषें एक आत्मदृष्टि करनेवाले जिस धीर पुरुषका मन सुखके विषें और स्त्रीविलासके विषें तथा संपत्तिके विषें प्रसन्न नहीं होता है और महादुःख विपत्तिके विषें कंपायमान नहीं होता है वही मुक्त है ॥ १५ ॥

न हिंसा नैव कारुण्यं नौद्धत्यं न च दीनता । नाश्चर्यं नैव च क्षोभः क्षीणसंसरणे नरे ॥ १६ ॥

अन्वयः--क्षीणसंसरणे नरे हिंसा न, कारुण्यम् न, औद्धत्यम् न, दीनता च एव न, आश्चर्यं न क्षोभः च एव न ॥ १६ ॥

जिस पुरुषका संसार क्षीण हो जाता है अर्थात् देहाभिमान दूर हो जाता है उसका जन्ममृत्युरूप बंधन दूर हो जाता है, ऐसे ज्ञानीके मनमें हिंसा कहिये परद्रोह नहीं हो जाता दयालुता नहीं होती है, उद्धतता नहीं होती है, दीनता नहीं रहती है, आश्चर्य नहीं रहता है और क्षोभभी नहीं रहता है, क्योंकि ज्ञानीका एक ब्रह्माकार हो जाता है ॥ १६ ॥

न मुक्तो विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः । असंसक्तमना नित्यं प्राप्ताप्राप्तमुपाश्नुते ॥ १७ ॥

अन्वयः--मुक्तः विषयद्वेष्टा न (भवति) वा विषयलोलुपः (च) न भ (वति) (किंतु) नित्यम् असंसक्तमनाः (सन्) प्राप्ताप्राप्तम् उपाश्नुते१७

जीवन्मुक्त पुरुष विषयोंमें द्वेष (विषयोंका त्याग) नहीं करता है और विषयोंमें आसक्तभी नहीं होता है किंतु विषयासक्तिरहित है मन जिसका ऐसा होकर नित्य प्रारब्धके अनुसार प्राप्त और अप्राप्तको भोगता है ॥ १७ ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्पनाः । शून्यचित्तो न जानाति कैवल्यमिव संस्थितः ॥ १८ ॥

अन्वयः--शून्यचित्तः कैवल्यम् संस्थितः इव समाधानासमाधानाहिताहितविकल्पनाः न जानाति ॥ १८ ॥

शून्य है चित्त जिसका ऐसा जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष विदेह कैवल्यदशाको प्राप्त हुएकी समान समाधान असमाधान, हित और अहितकी कल्पनाको नहीं जानता है, क्योंकि उसका मन ब्रह्माकार हो जाता है ॥ १८ ॥

निर्ममो निरहंकारो न किञ्चिदिति निश्चितः । अंतर्गलितसर्वाशः कुर्वन्नपि करोति न ॥ १९ ॥

अन्वयः–निर्ममः निरहङ्कारः किञ्चित् न इति निश्चितः अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन् अपि न करोति ॥ १९ ॥

जिसकी स्त्रीपुत्रादिके विषें ममता दूर हो गई है और जिसका देहाभिमान दूर हो गया है तथा ब्रह्मसे अन्य द्वितीय कोई वस्तु नहीं है ऐसा जिसे निश्चय हो गया है और जिसकी भीतरकी आशा नष्ट हो गई है ऐसा ज्ञानी पुरुष विषयभोग करता हुआभी नहीं करता है अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं करता है ॥ १९ ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः । दशां कामपि सम्प्राप्तो भवेद्गलितमानसः ॥ २० ॥

अन्वयः–मनः प्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः । गलितमानसः

काम् अपि दशाम् सम्प्राप्तः भवेत् ॥ २० ॥

जिसके मनके विषें मोह नहीं है ऐसा जो ज्ञानी पुरुप है उसके मनका प्रकाश तथा अज्ञानरूपी जडत्व निवृत्त हो जाता है तिस ज्ञानीकी कोई अनिर्वचनीय दशा होती है अर्थात् उस ज्ञानीकी दशा किसीके जाननेमें नहीं आती है ॥ २० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं तत्त्वज्ञस्वरूप-विंशतिकं नाम सप्तदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १७ ॥

अथाष्टादशं प्रकरणम् १८.

यस्य बोधोदये तावत्स्वप्नवद्भवति भ्रमः । तस्मै सुखैकरूपाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

अन्वयः—यस्य बोधोदये भ्रमः स्वप्नवत् भवति; तावत् तस्मै सुखै-

करूपाय शांताय तेजसे नमः ॥ १ ॥

इस प्रकरणमें शांतिकी प्रधानता वर्णन करते हुए प्रथम शांतिका वर्णन करते हैं तहांभी प्रथम शांत आत्माको नमस्कार करते हैं, जिस आत्माको ज्ञान होतेही यह प्रत्यक्ष संसार स्वप्नकी समान मिथ्या भासने लगता है, प्रथम तिस सुखरूप प्रकाशमान शांतसंकल्पस्वरूप आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

अर्जयित्वाऽखिलानर्थान् भोगानाप्नो-
ति पुष्कलान् । नहि सर्वपरित्याग-
मन्तरेण सुखी भवेत् ॥ २ ॥

अन्वयः–अखिलान् अर्थान् अर्जयित्वा पुष्कलान् भोगान् आप्नोति सर्वपरित्यागमन्तरेण सुखी नहि भवेत् ॥ २ ॥

यहां शांतसंकल्पस्वरूपकोही सुखरूप कहा तिस कारण शंका होती है कि, धनी पुरुषभी तो सुखी होता है फिर शांतसंकल्पकोही सुखरूप किस प्रकार कहा ? तिसका समाधान करते हैं कि पुरुष धन, धान्य, स्त्री और पुत्र आदि अनेक पदार्थोंको प्राप्त

करके अनेक प्रकारके भोगोंकोही भोगता है, सुखरूप नहीं होता है, क्योंकि उन भोगोंके नष्ट होनेपर फिर दुःख प्राप्त होता है, इस कारण संपूर्ण संकल्पविकल्पोंका त्याग किये विना सुखरूप कदापि नहीं हो सकता ॥ २ ॥

कर्त्तव्यदुःखमार्त्तण्डज्वालादग्धा-
न्तरात्मनः । कुतः प्रशमपीयूषधा-
रासारमृते सुखम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—कर्त्तव्यदुःखमार्त्तण्डज्वालादग्धान्तरात्मनः प्रशमपीयूषधारासारान् ऋते सुखं कुतः ? ॥ ३ ॥

मिथ्यारूप जो संकल्प विकल्प है उनको तुच्छ जाननाही संकल्पविकल्पका त्याग है, जैसे वंध्यापुत्रको मिथ्यारूप जान लेनाही त्याग है क्योंकि मिथ्यारूप वस्तुका अन्य किसी प्रकारका त्याग नहीं हो सकता, यह विषय अन्य रीतिसे दिखाते हैं नाना

प्रकारके जो कर्म उन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले जो

दुःख वही हुआ सूर्यकी किरणोंका अत्यंत तीक्ष्ण ताप तिससे दग्ध हुआ अंतःकरण जिसका ऐसे पुरुषको संकल्प विकल्पकी शांतिरूप अमृतधाराकी वृष्टिके विना सुख कहांसे हो सकता है ॥ ३ ॥

भवोऽयं भावनामात्रो न किञ्चित्पर-मार्थतः । नास्त्यभावः स्वभावानां भावाभावविभाविनाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—अयम् भवः भावनामात्रः परमार्थः किञ्चित् न (अस्ति) भावाभावविभाविनाम् स्वभावानाम् अभावः न अस्ति ॥ ४ ॥

संसाररूपी विषको दूर करनेवाला होनेके कारण। संकल्पविकल्पके शान्तिरूपको अमृत रूप करके वर्णन करते हैं कि यह संसार संकल्पमात्र है वास्त-वदृष्टिसे एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, यहां वादी शंका करता है कि भावरूप जो दृश्यमान जगत् है सो नष्ट होनेके अनंतर अभावरूप शून्य हो

जाता है, इस प्रकार तौ शून्यवादीका मत सिद्ध होता है इसके उत्तरमें श्रीगुरु अष्टावक्रजी कहते हैं कि संकल्पमात्र जगत्के नाश होनेके अनंतर सत्य-स्वभाव आत्मा अखंडरूपसे विराजमान रहता है इस कारण संसारका नाश होनेके अनंतर शून्य नहीं रहता है, किंतु उस समय निर्विकल्प केवलानंदरूप मुक्त आत्मा रहता है ॥ ४ ॥

न दूरं न च संकोचाल्लब्धमेवात्मनः पदम् । निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं निरंजनम् ॥ ५ ॥

अन्वयः–निर्विकल्पम् निरायासम् निर्विकारम् निरञ्जनम् आत्मनः पदम् न दूरम् न च संकोचात् (किन्तु) लब्धम् एव (अस्ति) ॥५॥

वादी प्रश्न करता है कि, संकल्पविकल्पकी निवृत्ति होतेही आत्माको अमृतत्वकी प्राप्ति किस प्रकार हो जाती है ? तहां कहते हैं कि आत्मस्वरूप दूर नहीं है किंतु सदा प्राप्त है, और परिपूर्ण है,

सदा संकल्प विकल्परहित है, निरायास कहिये श्रमके विनाही प्राप्त है, विकार जो जन्म और मृत्यु तिनसे रहित है और निरंजन कहिये माया (अविद्या) रूप उपाधिरहित है, जिस प्रकार कंठमें धारण की हुई मणि भूलसे दूसरे स्थानमें ढूंढनेसे नहीं मिलती है और विस्मृतिके दूर होतेही कंठमें प्रतीत हो जाती है, तिसी प्रकार अज्ञानसे आत्मा दूर प्रतीत होता है परंतु ज्ञान होनेपर प्राप्तही है ॥ ५ ॥

व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः । वीतशोका विराजन्ते निरावरणदृष्टयः ॥ ६ ॥

अन्वयः—निरावरणदृष्टयः व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः वीतशोकाः (संतः) विराजन्ते ॥ ६ ॥

तत्त्वज्ञानसे आत्मप्राप्ति होती है ऐसा जो शास्त्रकारोंका व्यवहार है सो किस प्रकार होता है ? और यदि आत्मा नित्य प्राप्तही है तो गुरुके उपदेश

और शास्त्राभ्यासकी क्या आवश्यकता है, तहां कहते हैं कि केवल अज्ञानरूपी मोहका परदा पड रहा है, तिससे आत्मस्वरूपका प्रकाश नहीं होता है; इस कारण सद्गुरुके उपदेशसे मोहको दूर करके जिससे स्वरूपका निश्चय किया है, ऐसा जो ज्ञानी है, वह जगत्में शोभायमान होता है, और उसकी दृष्टिपर फिर मोहरूपी परदा नहीं पडता है ॥ ६ ॥

समस्तं कल्पनामात्रमात्मा मुक्तः सनातनः । इति विज्ञाय धीरो हि किमभ्यस्यति बालवत् ॥ ७ ॥

अन्वयः—समस्तम् कल्पनामात्रम्, आत्मा सनातनः मुक्तः धीरः इति विज्ञाय हि बालवत् किम् अभ्यस्यति ॥ ७ ॥

यह संपूर्ण जगत् कल्पनामात्र है और आत्मा नित्यमुक्त है; ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जानकर क्या बालककी समान सांसारिक व्यवहार करता है ? अर्थात् कदापि नहीं करता है ॥ ७ ॥

आत्मा ब्रह्मेति निश्चित्य भावभावौ च कल्पितौ । निष्कामः किं विजानाति किं ब्रूते च करोति किम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—आत्मा ब्रह्म भावाभावौ च कल्पितौ इति निश्चित्य निष्कामः (सन्) किं विजानाति, किं ब्रूते, किं च करोति ॥ ८ ॥

संपूर्ण कल्पनामात्र है, इस ज्ञानका मूल कारण जो तत्त्वपदार्थका ऐक्यज्ञान उसीको कहते हैं कि आत्मा कहिये जीवात्मा जो 'त्वम्' पदार्थ है और ब्रह्म तत्पदार्थ है, ये दोनों अभिन्न हैं और अधिष्ठानरूप ब्रह्मका साक्षात्कार होनेपर भाव, अभावरूप संपूर्ण घटादि दृश्य पदार्थ कल्पित हैं ऐसा निश्चय करके निष्काम होता हुआ ज्ञानी क्या जानता है ? क्या कहता है ? और क्या करता है ? अर्थात् मनके ब्रह्माकार होनेके कारण न कुछ जानता है न कुछ कहता है, और न कुछ करता है किंतु आत्मस्वरूपमें स्थित होता है ॥ ८ ॥

अयं सोऽहमयं नाहमिति क्षीणा विकल्पनाः । सर्वमात्मेति निश्चित्य तूष्णींभूतस्य योगिनः ॥ ९ ॥

अन्वयः--सर्वम् आत्मा इति निश्चित्य तूष्णींभूतस्य योगिनः अयम् सः अहम् अयम् अहम् न इति विकल्पनाः क्षीणाः (भवन्ति) ॥ ९ ॥

आत्मज्ञानसे संपूर्ण कल्पना निवृत्त हो जाती हैं यह दिखाते हैं । जिस पुरुषको संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप भासता है वह पुरुष मुनिव्रतरूपी योगदशाको प्राप्त होता है, क्योंकि उस पुरुषका मन वृत्तिरहित होकर ब्रह्मके विषें एकाकार हो जाता है तदनंतर उस पुरुषको अपना तथा परका ज्ञान नहीं रहता है, अर्थात् मैं ध्यान करता हूं और दूसरा पुरुष अन्य कार्य करता है, यह अज्ञान दूर हो जाता है, तात्पर्य यह है कि, उस पुरुषकी कल्पनामात्र नष्ट हो जाती है ॥ ९ ॥

न विक्षेपो न चैकाग्र्यं नातिबोधो न मूढता । न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तस्य योगिनः ॥ १० ॥

अन्वयः--उपशान्तस्य योगिनः विक्षेपः न, ऐकाग्र्यम् च न अति-बोधः न मूढता न, सुखम् न वा दुःखम् च न (भवति) ॥ १० ॥

अब संकल्पविकल्परहित पुरुषका स्वरूप दिखाते हैं, जो पुरुष संकल्पविकल्परहित होकर शांतिको प्राप्त होता है, उस शांतस्वभाव योगीके मनको किसी बातका विक्षेप नहीं होता है, एकाग्रता नहीं होती है, अत्यंत ज्ञान अथवा मूढता नहीं होती है, सुख नहीं होता है और दुःखभी नहीं होता है, क्योंकि वह केवल ब्रह्मानंदस्वरूप होता है ॥ १० ॥

स्वाराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे
जने वने । निर्विकल्पस्वभावस्य
न विशेषोऽस्ति योगिनः ॥ ११ ॥

अन्वयः--निर्विकल्पस्वभावस्य योगिनः स्वाराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ लाभालाभे जने वने विशेषः न अस्ति ॥ ११ ॥

संकल्प और विकल्पसे रहित है स्वभाव जिसका ऐसे योगी (ज्ञानी) को स्वर्गका राज्य मिलनेसे, प्रारब्धकर्मानुसार प्राप्त हुए वस्तुसे तथा जनसमूहमें

निवास होनेसे कुछ प्रसन्नता नहीं होती है और भिक्षा मांगकर निर्वाह करनेसे किसी पदार्थकी प्राप्ति न होनेसे तथा निर्जन स्थानमें रहनेसे कुछ अप्रसन्नता नहीं होती है क्योंकि उसका मन तो ब्रह्माकार होताहै ॥ ११ ॥

क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व चार्थः क्व विवेकिता । इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तस्य योगिनः ॥ १२ ॥

अन्वयः-इदम् कृतम्, इदम् न (कृतम्), इति द्वन्द्वैः मुक्तस्य योगिनः धर्मः क्व, कामः अर्थः क्व, वा विवेकिता च क्व ॥ १२ ॥

यह किया, यह नहीं किया इत्यादि द्वंद्वोंसे रहित योगीको धर्म कहां, अर्थ कहां और मोक्षका उपाय-रूप ज्ञान कहा ? क्योंकि जब धर्मादिका कारण अविद्या और संकल्पादिही नहीं होते तो धर्मादि किस प्रकार हो सकते हैं ॥ १२ ॥

कृत्यं किमपि नैवास्ति न कापि हृदि रंजना । यथाजीवनमेवेह जीवन्मुक्तस्य योगिनः ॥ १३ ॥

अन्वयः—जीवन्मुक्तस्य योगिनः इह किम् अपि कृत्यम् न एव अस्ति, (तथा) हृदि का अपि रञ्जना न (अस्ति किन्तु) यथाजीवनम् एव (भवति) ॥ १३ ॥

जीवन्मुक्त योगीको इस संसारमें कुछभी करनेको नहीं होता है और हृदयके विषें कोई अनुरागही नहीं होता है, तथापि जीवन्मुक्त पुरुष जीवनके हेतु अदृष्टके अनुसार कर्म करता है ॥ १३ ॥

क्व मोहः क्व च वा विश्वं क्व तद्ध्यानं क्व मुक्तता । सर्वसंकल्पसीमायां विश्रान्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अन्वयः—सर्वसंकल्पसीमायाम् विश्रान्तस्य महात्मनः मोहः क्व विश्वम् क्व, तद्ध्यानं क्व, वा मुक्तता च क्व ॥ १४ ॥

संपूर्ण संकल्पोंकी सीमा कहिये अवधि जो आत्मज्ञान तिसके विषें विश्रामको प्राप्त होनेवाले योगीको

मोह कहां ? और विश्व कहां ? और विश्वका चिंतन कहां ? तथा मुक्तपना कहां ? क्योंकि वह तो ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ १४ ॥

येन विश्वमिदं दृष्टं स नास्तीति करोतु वै । निर्वासनः किं कुरुते पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १५ ॥

अन्वयः—येन विश्वम् दृष्टम् सः वै न अस्ति, इति करोतु (यः) पश्यन् अपि न पश्यति (स) निर्वासनः (सन्) किम् कुरुते ॥ १५ ॥

जिसने यह घटादि विश्व देखा है, वह कदाचित् घटादि विश्व नहीं है ऐसा जाने, परंतु जो देखता हुआ भी नहीं देखता है वह वासनारहित होकर क्या करे ? अर्थात् कुछभी नहीं अर्थात् जिसको वासनाओंका संस्कारही नहीं वह त्यागही क्या करे ॥ १५ ॥

येन दृष्टं परं ब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति चिन्तयेत् ॥ किं चिन्तयति निश्चिन्तो द्वितीयं यो न पश्यति ॥ १६ ॥

अन्वयः-येन परम् ब्रह्म दृष्टम् सः अहं ब्रह्म इति चिन्तयेत्, यः (तु) द्वितियम् न पश्यति (सः) निश्चिन्तः (सन्) किम् चिन्तयाति ॥ १६ ॥

जो पुरुष परब्रह्मको देखे, वह 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा चिंतन करे और जो द्वितीयको देखताही नहीं है, वह निश्चिन्त होकर क्या चिन्तन करेगा? अर्थात् कुछ-भी चिन्तन नहीं करेगा, अर्थात् जिसकी द्वैतदृष्टि नहीं है उसे ब्रह्मचिंतन करनेकोभी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १६ ॥

दृष्टो येनात्मविक्षेपो निरोधं कुरुते त्वसौ। उदारस्तु न विक्षिप्तः साध्या-भावात्करोति किम् ॥ १७ ॥

अन्वयः-येन आत्मविक्षेपः दृष्टः असौ तु निरोधम् कुरुते, उदारः तु विक्षिप्तः न भवति, (सः) साध्याभावात् किम् करोति? ॥ १७ ॥

अंतःकरणका विक्षेप जिस पुरुषके देखनेमें आ-ता हो वह मनको वशमें करनेका उपाय करे और जो

सर्वत्र एक ब्रह्मकोही देखता है, उसके तो विक्षेप हैही नहीं उसको कुछ साधने योग्य नहीं होता है इस कारण वह कुछ साधनभी नहीं करता है ॥ १७ ॥

धीरो लोकविपर्यस्तो वर्त्तमानोऽपि लोकवत् । न समाधिं न विक्षेपं न लेपं स्वस्य पश्यति ॥ १८ ॥

अन्वयः--लोकविपर्यस्तः धीरः लोकवत् वर्त्तमानः अपि स्वस्य समाधिम् विक्षेपम् न (तथा) लेपम् (च) न पश्यति ॥ १८ ॥

संसारके विक्षेपोंसे रहित धीर पुरुषकी समान वर्ताव करता हुआभी अपने विषें समाधिको नहीं मानता है, विक्षेप नहीं मानता है, तथा किसी कार्यमें आसक्तिभी नहीं मानता है ॥ १८ ॥

भावाभावविहीनो यस्तृप्तो निर्वासनो बुधः । नैव किञ्चित्कृतं तेन लोकदृष्ट्या विकुर्वता ॥ १९ ॥

अन्वयः--यः बुधः बुधः भावाभावविहीनः (तथा) निर्वासनः (भवति) लोकदृष्ट्या विकुर्वता (अपि) तेन किञ्चित् न एव कृतम् ॥ १९ ॥

जो ज्ञानी है वह अपने आनंदसे परिपूर्ण रहता है इस कारण किसीकी स्तुति निंदा नहीं करता है. लोक तो यह देखते हैं कि ज्ञानी अनेक प्रकारकी क्रिया करता है, परंतु ज्ञानी आसक्तिपूर्वक कोईभी क्रिया नहीं करता है, क्योंकि ज्ञानीको अभिमान नहीं होता है ॥ १९ ॥

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा नैव धीरस्य दु-
र्ग्रहः । यदा यत्कर्तुमायाति तत्कृत्वा
तिष्ठतः सुखम् ॥ २० ॥

अन्वयः—यदा यत् कर्तुम् आयाति तत् सुखम् कृत्वा तिष्ठतः धीरस्य प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ दुर्ग्रहः न एव (भवति) ॥ २० ॥

प्रारब्धके अनुसार जो प्रवृत्त अथवा निवृत्त कर्म जब करनेमें आवे उसको अनायासहीमें करके स्थित होनेवाले धीर पुरुषको प्रवृत्तिके विषें अथवा निवृत्तिके विषें दुराग्रह नहीं होता है ॥ २० ॥

निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्त-
बन्धनः । क्षिप्तः संस्कारवातेन चेष्टते
शुष्कपर्णवत् ॥ २१ ॥

अन्वयः--निर्वासनः निरालम्बः स्वच्छंदः मुक्तबंधनः (ज्ञानी) संस्कारवातेन क्षिप्तः (सन्) शुष्कपर्णवत् चेष्टते ॥ २१ ॥

यहां वादी शंका करता है कि, तुम तो ज्ञानीको वासनारहित कह रहे हो फिर वह प्रवृत्त अथवा निवृत्त कर्म किस प्रकारसे करता है ? तहां कहते हैं कि ज्ञानी वासनारहित है ज्ञानीको किसीका आधार नहीं लेना पडता है; इस कारणही स्वाधीन होता है, तथा ज्ञानीको राग द्वेष नहीं है परंतु प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होता है, उसको करता है जिस प्रकार पृथ्वीके ऊपर पडे हुए सूखे पत्तोंमें कहां जानेकी अथवा स्थित होनेकी वासना (सामर्थ्य) नहीं होती है परंतु जिस दिशाको वायु आता है उसी दिशाको पत्ते उडने

लगते हैं, इसी प्रकार ज्ञानी प्रारब्धके अनुसार भोग-चेष्टा करताहै ॥ २१ ॥

असंसारस्य तु क्वापि न हर्षो न विषादता । स शीतलमना नित्यं विदेह इव राजते ॥ २२ ॥

अन्वयः--असंसारस्य तु क्व अपि हर्षः न (भवति), विषादता(च) न (भवति) नित्यम् शीतलमनाः सः विदेहः इव राजते ॥ २२ ॥

जिसके संसारके हेतु संकल्प विकल्प दूर हो जाते हैं, उस असारी पुरुषको न हर्ष होता है न विषाद होता है अर्थात् उसके चित्तमें हर्ष आदि छः ऊर्मि नहीं उत्पन्न होती हैं, वह नित्य शीतल मनवाला मुक्तकी समान विराजमान होता है ॥ २२ ॥

कुत्रापि न जिहासास्ति नाशो वापि न कुत्रचित् । आत्मारामस्य धीरस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥ २३ ॥

अन्वयः--शीतलाच्छतरात्मनः आत्मारामस्य धीरस्य कुत्र अपि जिहासा न (अस्ति) वा कुत्रचित् अपि नाशः न (अस्ति) ॥ २३ ॥

जो पुरुष आत्माके विषें रमण करता है वह धीरवान् होता है और उस पुरुषका अंतःकरण परम पवित्र और शीतल होता है उसको किसी वस्तुके त्यागनेकी इच्छा नहीं होती है, और किसी वस्तुके ग्रहण करनेकी भी इच्छा नहीं होती है क्योंकि उस ज्ञानीके राग द्वेषका लेशमात्रभी नहीं होता है, और उस ज्ञानीको कहीं अनर्थभी नहीं होता है क्योंकि अनर्थका हेतु जो अज्ञान सो उसके विषें नहीं होता है ॥ २३ ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तस्य कुर्वतोऽस्य यदृच्छया । प्राकृतस्येव धीरस्य न मानो नावमानता ॥ २४ ॥

अन्वयः--प्रकृत्या शून्यचित्तस्य प्राकृतस्य इव यदृच्छया कुर्वतः अस्य मानः न (वा) अवमानता न ॥ २४ ॥

स्वभावसेही जिसका चित्त संकल्पविकल्परूप विकारसे रहित है और जो प्रारब्धानुसार प्रवृत्त निवृत्त

कर्मोंको अज्ञानीकी समान करता है, ऐसे धीर कहिये ज्ञानीको मान और अपमानका अनुसंधान नहीं होता है ॥ २४ ॥

कृतं देहेन कर्मेदं न मया शुद्धरूपिणा । इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपि करोति न ॥ २५ ॥

अन्वयः—इदम् कर्म देहेन कृतम् शुद्धरूपिणा मया न (कृतम्) यः इति चिन्तानुरोधी (सः) कुर्वन् अपि न करोति ॥ २५ ॥

संपूर्ण कर्म क्रिया देह करता है मैं नहीं करता हूं क्योंकि मैं तो शुद्धरूप साक्षी हूं इस प्रकार जो विचारता है वह पुरुष कर्म करता हुआभी बंधनको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि उसको कर्म करनेका अभिमान नहीं होता है ॥ २५ ॥

अतद्वादीव कुरुते न भवेदपि बालिशः । जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान् संसरन्नपि शोभते ॥ २६ ॥

अन्वयः--जीवन्मुक्तः अतद्वादी इव कुरुते, (तथा) अपि बालिशः न भवेत् (अतः एव) संसरन् अपि सुखी श्रीमान् शोभते ॥ २६ ॥

किये हुए कार्यको " मैं करता हूं " ऐसे नहीं कहता हुआ जीवन्मुक्त पुरुष कार्यको करता हुआभी मूर्ख नहीं होता है, क्योंकि अंतःकरणके विषें ज्ञानवान् होता है इस कारणही संसारके व्यवहारको करता हुआभी भीतर सुखी और शोभायमान होता है२६॥

नानाविचारसुश्रान्तो धीरो विश्रान्तिमागतः। न कल्पते न जानाति न शृणोति न पश्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः- नानाविचारसुश्रान्तः विश्रान्तिम् आगतः धीरः न कल्पते न जानाति न शृणोति न पश्यति ॥ २७ ॥

नाना प्रकारके संकल्पविकल्परूप विचारोंसे रहित होकर आत्माके विषें विश्रामको प्राप्त हुआ धीर कहिये ज्ञानी पुरुष संकल्पविकल्परूप मनके व्यापार-

को नहीं करता है, और न जानता है तथा बुद्धिके

व्यापारको नहीं करता है शब्दको नहीं सुनता है, रू-पको नहीं देखता है अर्थात् इंद्रियमात्रके व्यापारको नहीं करता है क्यों कि उसे कर्तृत्वका अभिमान कदापि नहीं होता है ॥ २७ ॥

असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्न चेतरः ।
निश्चित्य कल्पितं पश्यन्ब्रह्मैवास्ते महाशयः ॥ २८ ॥

अन्वयः–(ज्ञानी) असमाधेः मुमुक्षुः न अविक्षेपात् इतरः च न (सर्वम्) कल्पितम् (इति) निश्चित्य पश्यन् (अपि) महाशयः ब्रह्म एव अस्ति ॥ २८ ॥

ज्ञानी मुमुक्षु नहीं होता है, क्योंकि समाधि नहीं करता है और बद्धभी नहीं होता है, क्योंकि ज्ञानीके विषें विक्षेप कहिये द्वैत भ्रम नहीं होता है, किंतु यह संपूर्ण दृश्यमान जगत् कल्पित है ऐसा निश्चय करके तदनंतर बाधित प्रपंचकी प्रतीतिसे देखता

हुआभी निर्विकार चित्त होता है इस कारण साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होकर स्थित होता है ॥ २८ ॥

यस्यान्तः स्यादहङ्कारो न करोति करोति सः । निरहङ्कारधीरेण न किञ्चिद्धि कृतं कृतम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—यस्य अन्तः अहङ्कारः स्यात् सः न करोति (अपि) करोति निरहङ्कारधीरेण हि कृतम् (अपि) किञ्चित् न कृतम् ॥ २९ ॥

तहां वादी शंका करता है कि, संसारको देखता हुआभी ब्रह्मरूप किस प्रकार हो सकता है तिसका समाधान करते हैं कि, जिसके अंतःकरणके विषें अहंकारका अध्यास होता है, वह पुरुष लोकदृष्टिसे न करता हुआभी संकल्पविकल्प करता है क्योंकि उसको कर्तृत्वका अध्यास होता है और अहंकार-रहित जो धीर कहिये ज्ञानी पुरुष है, वह लोकदृष्टिसे कार्य करता हुआभी अपनी दृष्टिसे नहीं करता

है क्योंकि उसको कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता है॥ २९॥

नोद्विग्नं न च सन्तुष्टमकर्तृस्पन्दवर्जितम्। निराशं गतसन्देहं चित्तं मुक्तस्य राजते ॥३०॥

अन्वयः-मुक्तस्य चित्तम् उद्विग्नम् न (भवति) सन्तुष्टम् च न (भवति) अकर्तृस्पंदवाजतम् निराशम् गतसन्देहम् राजते ॥ ३० ॥

जो जीवन्मुक्त पुरुष है उसके चित्तमें कभी उद्वेग (घबडाहट) नहीं होती है तिसी प्रकार संतोषभी नहीं होता है क्योंकि कर्तापनेके अभिमानका उसके विषें लेशभी नहीं होता है, तिसी प्रकार उसको आशा तथा संदेहभी नहीं होता है, क्योंकि वह तो सदा जीवन्मुक्तही है ॥ ३० ॥

निर्ध्यातुं चेष्टितुं वापि यच्चित्तं न प्रवर्त्तते। निर्निमित्तमिदं किंतु निर्ध्यायति विचेष्टते ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यच्चित्तम् निध्यातुम् अपि वा चेष्टितुम् न प्रवर्त्तते किन्तु इदम् निर्निमित्तम् निध्यायति विचेष्टते ॥ ३१ ॥

जिस ज्ञानीका चित्त क्रियारहित होकर स्थित होनेको अथवा संकल्प विकल्पादिरूप चेष्टा करनेको प्रवृत्त नहीं होता है, परंतु ज्ञानीका चित्त निमित्त कहिये संकल्पविकल्परहित होकर आत्मस्वरूपके विषें निश्चल स्थित होता है तथा अनेक प्रकारकी संकल्परूप चेष्टाभी करता है ॥ ३१ ॥

तत्त्वं यथार्थमाकर्ण्य मन्दः प्राप्नो-
ति मूढताम् । अथवा यातिसंको-
चममूढः कोऽपि मूढवत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—मन्दः यथार्थम् तत्त्वम् आकर्ण्य मूढताम् प्राप्नोति अथवा संकोचम् आयाति कः अपि अमूढः (अपि) मूढवत् (भवति) ॥ ३२॥

कोई अज्ञानी श्रुतिसे यथार्थ तत्त्व (तत् और त्वम् पदार्थके कल्पित भेद) को श्रवण करके असं-भावना और विपरीत भावनाओंके द्वारा अर्थात् सं-

शय और विपर्यय करके मूढताको प्राप्त होता है, अथवा तत्-त्वम् पदार्थके भेदको जाननेके निमित्त संकोचन कहिये चित्तकी समाधि लगाता है और कोई ज्ञानीभी बाहरकी गतिसे मूढकी समान बाहरके व्यवहारोंको करता है ॥ ३२ ॥

एकाग्रता निरोधो वा मूढैरभ्यस्यते भृशम् । धीराः कृत्यं न पश्यंति सुप्तवत् स्वपदे स्थिताः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—मूढैः एकाग्रता वा निरोधः भृशम् अभ्यस्यते स्वपदे स्थिताः धीराः सुप्तवत् कृत्यम् न पश्यन्ति ॥ ३३ ॥

जो देहाभिमानी मूर्ख हैं वे मनको वशमें करनेके अर्थ अनेक प्रकारका अभ्यास करते हैं परंतु उनका मन वशमें नहीं होता है और जो आत्मज्ञानी धैर्य-वान् पुरुष है वह आत्मस्वरूपके विषें स्थितिको प्राप्त होता है उसका मन तो स्वभावसेही वशीभूत

होता है, जिस प्रकार निद्राके समयमें मनकी चेष्टा बन्द हो जाती है, तिसी प्रकार ज्ञान होनेपर मनकी चेष्टा बंद हो जाती है, क्योंकि अद्वैतात्मस्वरूपके ज्ञानसे भ्रममात्रकी निवृत्ति हो जाती है ॥ ३३ ॥

अप्रयत्नात्प्रयत्नाद्वा मूढो नाप्नोति निर्वृतिम् । तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञो भवति निर्वृतः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—मूढः अप्रयत्नात् वा प्रयत्नात् (अपि) निर्वृतिं न आप्नोति प्राज्ञः तत्त्वनिश्चयमात्रेण निर्वृतः भवति ॥ ३४ ॥

जो मूढ पुरुष है और जिसको आत्मज्ञान नहीं हुआ है वह अनेक प्रकारका अभ्यास करके मनको वशमें करे अथवा न करे तोभी उसको निवृत्तिका सुख नहीं प्राप्त होता है, और आत्मज्ञानी है उसने तो ज्योंही आत्मस्वरूपका निश्चय किया कि, वह परम निवृत्तिके सुखको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

शुद्धं बुद्धं प्रियं पूर्णं निष्प्रपञ्चं निराम-
यम् । आत्मानं तं न जानन्ति तत्रा-
ऽभ्यासपरा जनाः ॥ ३९ ॥

अन्वयः--तत्र अभ्यासपराः जनाः शुद्धम् बुद्धम् प्रियम् पूर्णम् निष्प्रपञ्चं निरामयम् तम् आत्मानम् न जानन्ति ॥ ३९ ॥

सद्गुरु और वेदांतवाक्योंकी शरण लिये बिना देहाभिमान दूर नहीं होता है तिस देहाभिमानसे मन जगत्के विषें आसक्त रहता है, तिस कारण वह पुरुष आत्मस्वरूपको नहीं जानता है क्योंकि आत्मस्वरूप तो शुद्ध है, चैतन्यस्वरूप है और आनंदरूप परिपूर्ण, संसारकी उपाधिसे रहित तथा त्रिविधतापरहित है, इस कारण देहाभिमानी पुरुषको उसका ज्ञान नहीं होता है ॥ ३९ ॥

नाप्नोति कर्मणा मोक्षं विमूढोऽभ्या-
सरूपिणा । धन्यो विज्ञानमात्रेण
मुक्तस्तिष्ठत्यविक्रियः ॥ ४० ॥

• अन्वयः-विमूढः अभ्यासरूपिणा कर्मणा मोक्षम् न आप्नोति धन्यः विज्ञानमात्रेण अविक्रियः मुक्तः तिष्ठति ॥ ३६ ॥

जो पुरुष देहाभिमानी है वह योगाभ्यासरूप कर्म करके मोक्षको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि कर्ममात्रसे मोक्षप्राप्ति होनी दुर्लभ है. सोई श्रुतिमेंभी कहा है कि " न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः " योगाभ्यास आदि कर्मसे मोक्ष नहीं होता है, संतान उत्पन्न करनेसे मोक्ष नहीं होता है, धन प्राप्त करनेसे मोक्ष नहीं होता है, यदि किन्हीं ज्ञानियोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई है तो देहाभिमानके त्यागसेही हुई है इस कारण कोई भाग्यवान् विरला पुरुषही आत्मज्ञानी प्राप्तिमात्रसे त्याग दिये हैं सम्पूर्ण संकल्पविकल्पादि जिसने ऐसा होकर मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

मूढो नाप्नोति तद्ब्रह्म यतो भवितु-
मिच्छति । अनिच्छन्नपि धीरो हि
परब्रह्मस्वरूपभाक् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यतः मूढः ब्रह्म भवितुम् इच्छति न (अतः) तत् न आप्नोति हि धीरः अनिच्छन् अपि परब्रह्मस्वरूपभाक् भवति ॥ ३७ ॥

मूढपुरुष योगाभ्यासरूप कर्म करके ब्रह्मरूप होनेकी इच्छा न करता है इस कारण ब्रह्मको नहीं प्राप्त होता है और ज्ञाता तो मोक्षकी इच्छा न करता है तो भी परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त होता है क्योंकि उसका देहाभिमान दूर हो गया है ॥ ३७ ॥

निराधारा ग्रहव्यग्रा मूढाः संसार-
पोषकाः । एतस्यानर्थमूलस्य मूल-
च्छेदः कृतो बुधैः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—मूढाः निराधाराः ग्रहव्यग्राः संसारपोषकाः (भवंति) बुधैः अनर्थमूलस्य एतस्य मूलच्छेदः कृतः ॥ ३८ ॥

मूढ जो अज्ञानी पुरुष हैं वे सद्गुरु और वेदांतवाक्योंके आधारके विनाही केवल योगाभ्यासरूप कर्म करकेही मैं मुक्त हो जाऊंगा इस प्रकार निरर्थक दुराग्रह करनेवाले और संसारको पुष्ट करनेवाले होते हैं, संसारको दूर करनेवाला जो ज्ञान जिसका उनके

विषें लेशभी नहीं है और ज्ञानी पुरुष जो हैं इन्होंने जन्ममरणरूप अनर्थके मूलकारण इस संसारको ज्ञानके द्वारा मूलसेही छेदन कर दिया हैं ॥ ३८ ॥

न शांतिं लभते मूढो यतः शमितु-
मिच्छति । धीरस्तत्त्वं विनिश्चित्य
सर्वदा शांतमानसः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यतः मूढः शमितुम् इच्छति (अतः) शान्तिम् न लभते धीरः तत्त्वम् विनिश्चित्य सर्वदा शान्तमानसः (भवति) ॥ ३९ ॥

जो मूढ कहिये देहाभिमानी पुरुष है वह योगाभ्यासके द्वारा शांतिकी इच्छा करता है, परंतु योगाभ्यासके शांतिको प्राप्त नहीं होता है और ज्ञानी पुरुष आत्मतत्त्वका निश्चय करके सदा शांतमन रहता है ॥ ३९ ॥

कात्मनो दर्शनं तस्य यद्दृष्टमवलम्ब-
ते । धीरास्तं तं न पश्यंति पश्य-
न्त्यात्मानमव्ययम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—यत् दृष्टम् अवलम्बते तस्य आत्मनः दर्शनम् क्व, ते धीराः तम् पश्यन्ति (किन्तु) तम् अव्ययम् आत्मानम् पश्यन्ति ॥ ४० ॥

जो अज्ञानी पुरुष दृष्ट पदार्थोंको सत्य मानता है, उसको आत्मदर्शन किस प्रकार हो सकता है ? परंतु धैर्यवान् पुरुष तिन दृष्ट पदार्थोंको सत्य नहीं मानता है किंतु एक अविनाशी आत्माको देखता है ॥ ४० ॥

क्व निरोधो विमूढोऽस्य यो निर्बन्धं करोति वै । स्वारामस्यैव धीरस्य सर्वदासावकृत्रिमः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यः वै निर्बन्धम् करोति, (तस्य) विमूढस्य निरोधः क्व, स्वारामस्य धीरस्य एव असौ सर्वदा अकृत्रिमः (भवति ॥ ४१ ॥

जो मूढ देहाभिमानी पुरुष शुष्क चित्तनिरोधके विषें दुराग्रह करता है, तिस मूढके चित्तका निरोध किसी प्रकार हो सकता है ? अर्थात् उसके चित्तका कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि समाधिके अनंतर अज्ञानीका चित्त फिर संकल्पविकल्पयुक्त हो जाता है और आत्माराम धीर पुरुषके चित्तका निरोध

स्वाभाविकही होता है; क्योंकि उसका चित्त संकल्पादिरहित निश्चल और ब्रह्माकार होता है ॥ ४१ ॥

भावस्य भावकः कश्चिन्न किञ्चिद्भावकोऽपरः । उभयाभावकः कश्चिदेवमेव निराकुलः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—कश्चित् भावस्य भावकः अपरः न किञ्चित् भावकः एवम् कश्चित् उभयाभावकः एव निराकुलः अस्ति ॥ ४२ ॥

कोई नैयायिक आदि ऐसा मानते हैं कि, यह जगत् वास्तवमें सत्य है और कोई शून्यवादी ऐसा मानते हैं कि, कुछभी नहीं है और हजारोंमें एक आदमी आत्माका अनुभव करनेवाला अभाव और भाव दोनोंको न मानकर स्वस्थचित्तवाला रहता है ॥ ४२ ॥

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्ति कुबुद्धयः । न तु जानन्ति संमोहाद्यावज्जीवमनिर्वृताः ॥ ४३ ॥

अन्वयः-कुबुद्धयः शुद्धम् अद्वयम् आत्मानम् भावयन्ति, जानन्ति तु न, संमोहात् यावज्जीवम् अनिर्वृताः (भवन्ति) ॥ ४३ ॥

मूढबुद्धि अर्थात् देहाभिमानी पुरुष आत्माका चिंतन करते हैं, परंतु जानते नहीं क्योंकि मोहसे युक्त होते हैं. इस कारणही जन्मभर उनकी संकल्प-विकल्पोंसे निवृत्ति नहीं होती है, अतएव संतोषकोभी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥

मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेण न वि-
द्यते । निरालम्बैव निष्कामा बुद्धि-
र्मुक्तस्य सर्वदा ॥ ४४ ॥

अन्वयः-मुमुक्षोः बुद्धिः आलम्बम् अन्तरेण न विद्यते, मुक्तस्य बुद्धिः सर्वदा निरालम्बा निष्कामा एव ॥ ४४ ॥

जिसको आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ है ऐसे मुमुक्षुपुरुषकी बुद्धि सधर्मकवस्तुरूप आश्रयके विना नहीं होती है और जीवन्मुक्त पुरुषकी बुद्धि मुक्तिवि-षयमेंभी इच्छारहित और सदा निरालम्ब (निर्विशेष आत्मारूप) होती है ॥ ४४ ॥

विषयद्वीपिनो वीक्ष्य चकिताः श-
रणार्थिनः । विशन्ति झटिति क्रोडं
निरोधैकाग्रसिद्धये ॥ ४५ ॥

अन्वयः—विषयद्वीपिनः वीक्ष्य चकिताः शरणार्थिनः (मूढाः) निरोधैकाग्रसिद्धये झटिति क्रोडम् विशन्ति ॥ ४५ ॥

विषयरूप व्याघ्रको देखकर भयभीत हुए, रक्षा-की इच्छा करनेवाले अज्ञानी पुरुषही जल्दीसे चित्त-का निरोध और एकाग्रताकी सिद्धिके अर्थ गुहाके भीतर घुसते हैं, ज्ञानी नहीं घुसते हैं, ॥ ४५ ॥

निर्वासनं हरिं दृष्ट्वा तूष्णीं विषयद-
न्तिनः । पलायन्ते न शक्तास्ते से-
वन्ते कृतचाटवः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—विषयदन्तिनः निर्वासनम् हरिम् दृष्ट्वा न शक्ताः (सन्तः) तूष्णीम् पलायन्ते ते कृतचाटवः सेवन्ते ॥ ४६ ॥

वासनारहित पुरुषरूप सिंहको देखकर विषयरू-पी हस्ती असमर्थ होकर चुपचाप भाग जाते हैं और

तिस वासनारहित पुरुषको आकर्षित होकर स्वयं सेवन करते हैं ॥ ४६ ॥

न मुक्तिकारिकां धत्ते निःशंको युक्तमानसः । पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्नास्ते यथासुखम् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—निःशङ्कः युक्तमानसः (ज्ञानी) मुक्तिकारिकां न धत्ते (किन्तु) पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् यथासुखम् आस्ते ॥ ४७ ॥

निःशंक और निश्चल मनवाला ज्ञानी यम नियम आदि योगक्रियाको आग्रहसे नहीं करता है, किन्तु देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ और भोजन करता हुआभी आत्मसुख विषेंही निमग्न रहता है ॥ ४७ ॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः । नैवाचरमनाचारमौदास्यं वा न पश्यति ॥ ४८॥

अन्वयः--वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिः निराकुलः (ज्ञानी) आचारम् अनाचारम् वा औदास्यम् न एव पश्यति ॥ ४८ ॥

गुरु और वेदांतवाक्यों द्वारा चैतन्यस्वरूप आत्माके श्रवणमात्रसे हुआ है परिपूर्ण आत्माका साक्षात्कार जिसको और निराकुल अर्थात् अपने स्वरूपके विषें स्थित ज्ञानी आचारको वा अनाचारको अथवा उदासीनता इनकी ओर दृष्टि नहीं देता है क्योंकि वह ब्रह्माकार होता है ॥ ४८ ॥

यदा यत्कर्त्तुमायाति तदा तत्कुरुते ऋजुः । शुभं वाप्यशुभं वापि तस्य चेष्टा हि बालवत् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—यदा यत् वा अपि शुभम् अपि वा अशुभम् कर्तुम् आयाति तदा तत् ऋजुः (सन्) कुरुते (यतः) हि तस्य चेष्टा बालवत् (भवति) ॥४९॥

अब जो शुभ अथवा अशुभ कर्म प्रारब्धानुसार करना पडता है, उसको आग्रहरहित होकर करता है क्योंकि तिस जीवन्मुक्त ज्ञानीकी चेष्टा बालककी

समान होती है, अर्थात् वह प्रारब्धानुसार कर्म कर-ता है रागद्वेषसे नहीं करता है ॥ ४९ ॥

स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोति स्वात-न्त्र्याल्लभते परम् । स्वातन्त्र्यान्नि-र्वृतिंगच्छेत्स्वातन्त्र्यात्परमंपदम्॥५०॥

अन्वयः-स्वातन्त्र्यात् सुखम् आप्नोति, स्वातन्त्र्यात् परम् लभते, स्वातन्त्र्यात् निर्वृतिं गच्छेत्, स्वातन्त्र्यात् परमम् पदम् (प्राप्नुयात्) ॥ ५० ॥

रागद्वेषरहित पुरुष सुखको प्राप्त होता है, परम ज्ञानको प्राप्त होता है और नित्य सुखको प्राप्त होता है तथा आत्मस्वरूपके विषें विश्रामको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनो म-न्यते यदा । तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यदा स्वात्मनः अकर्तृत्वम् अभोक्तृत्वम् मन्यते तदा एव (अस्य) समस्ताः चित्तवृत्तयः क्षीणाः भवन्ति ॥ ५१ ॥

जब पुरुष अपने विषें कर्तापनेका और भोक्तापनेका अभिमान त्याग देता है तबही उस पुरुषकी संपूर्ण चित्तकी वृत्ति क्षीण हो जाती है ॥ ५१ ॥

उच्छृंखलाप्यकृतिका स्थितिर्धीरस्य राजते। न तु सस्पृहचित्तस्य शांतिर्मूढस्य कृत्रिमा ॥ ५२ ॥

अन्वयः—धीरस्य उच्छृंखला अपि अकृतिका स्थितिः राजते; सस्पृहचित्तस्य मूढस्य कृत्रिमा शांतिः तु न (राजते) ॥ ५२ ॥

जो पुरुष निःस्पृहचित्त होता है उस धैर्यवान् ज्ञानीकी स्वाभाविक शांतिरहितभी स्थिति शोभायमान होती है और इच्छासे आकुल है चित्त जिसका ऐसे अज्ञानी पुरुषकी बनावटी शांति शोभित नहीं होती है ॥ ५२ ॥

विलसंति महाभोगैर्विशन्ति गिरि-
गह्वरान् । निरस्तकल्पना धीरा
अबद्धा मुक्तबुद्धयः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—अबद्धाः मुक्तबुद्धयः निरस्तकल्पनाः धीराः महाभोगैः वि-
लसंति गिरिगह्वरान् विशन्ति ॥ ९३ ॥

जिन ज्ञानियोंकी कल्पना निवृत्त हो गई है, जो
आसक्तिरहित हैं, तथा जिनकी बुद्धि अभिमानरहित
है वे ज्ञानी पुरुष कभी प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए भो-
गोंसे विलास करते हैं और कभी प्रारब्धानुसार पर्वत
और वनोंके विषें विचरते हैं ॥९३॥

श्रोत्रियं देवतां तीर्थमंगनां भूपतिं
प्रियम् । दृष्ट्वा सम्पूज्य धीरस्य न
कापि हृदि वासना ॥ ९४ ॥

अन्वयः—श्रोत्रियम् देवताम् तीर्थम् सम्पूज्य (तथा) अंगनाम्
भूपतिम् प्रियम् दृष्ट्वा धीरस्य हृदि का अपि वासना न (जायते)९४॥

वेदपाठी ब्राह्मण और देवताकी प्रतिमा तथा तीर्थका पूजन करके और सुन्दर स्त्री राजा और प्रिय पुत्रादिको देखकरभी ज्ञानीके हृदयमें कोई वासना नहीं उत्पन्न होती है ॥ ५४ ॥

भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैश्च दौहित्रैश्चा-
पि गोत्रजैः। विहस्य धिकृतो योगी
न याति विकृतिं मनाक् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—योगी भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैः दौहित्रैः च अपि च गोत्रजैः विहस्य धिकृतः (अपि) मनाक् विकृतिम् न याति ॥ ५५ ॥

सेवक स्त्री पुत्र दौहित्र (धेवते) और अन्य गोत्रके पुरुषभी यदि योगीका उपहास करें या धिक्कार देवें तौ उसका मन किंचिन्मात्रभी क्षोभको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि उस ज्ञानीका मोह दूर हो जाता है ॥ ५५ ॥

सन्तुष्टोऽपि न सन्तुष्टः खिन्नोऽपि
न च खिद्यते। तस्याश्चर्यदशां तां
तां तादृशा एव जानते ॥ ५६ ॥

अन्वयः–(योगी) सन्तुष्टः आपि सन्तुष्टः न (भवति) खिन्नः अपि च न खिद्यते, तस्य तां तां (तादृशाम्) आश्चर्यदशाम् तादृशाः एव जानते ॥ ५६ ॥

ज्ञानी लोकदृष्टिसे संतोषयुक्त दीखता हुआभी संतोषयुक्त नहीं होता है और लोकदृष्टिसे खिन्न दीखता हुआभी खिन्न नहीं होता है, ज्ञानीकी इस प्रकारकी दशाको ज्ञानीही जानते हैं ॥ ५६ ॥

कर्त्तव्यतैव संसारो न तां पश्यन्ति सूरयः। शून्याकारा निराकारा निर्विकारा निरामयाः ॥ ५७ ॥

अन्वयः-संसारः कर्त्तव्यता एव शून्याकाराः निराकाराः निर्विकाराः निरामयाः सूरयः ताम् न पश्यन्ति ॥ ५७ ॥

कर्त्तव्यता कहिये मेरा यह कर्त्तव्य है इस प्रकारका जो कार्यका संकल्प है सोई संसार है परंतु संपूर्ण विश्वके नाश होनेपरभी जो वर्तमान रहते हैं और जो निराकार कहिये घटादिकसे आकारसे रहित हैं

और जो सर्वत्र आत्मदृष्टि करनेवाले तथा संकल्पवि-

कल्परूपी रोगसे रहित हैं वे कदापि कर्तव्यताको नहीं देखते हैं अर्थात् किसी कार्यके करनेका संकल्प नहीं करते हैं ॥ ५७ ॥

अकुर्वन्नपि संक्षोभाद्व्यग्रः सर्वत्र मूढधीः । कुर्वन्नपि तु कृत्यानि कुशलो हि निराकुलः ॥ ५८ ॥

अन्वयः–मूढधीः अकुर्वन् अपि सर्वत्र संक्षोभात् व्यग्रः (भवति), हि कुशलः तु कृत्यानि कुर्वन् अपि निराकुलः (भवति) ॥ ५८ ॥

अज्ञानी पुरुष कर्मोंको न करता हुआभी सर्वत्र संकल्पविकल्प करनेके कारण व्यग्र रहता है; और ज्ञानी कार्योंको करता हुआभी निर्विकारचित्त रहता है क्योंकि वह तो आत्मसुखके विषें विराजमान होता है ॥ ५८ ॥

सुखमास्ते सुखं शेते सुखमायाति याति च । सुखं वक्ति सुखं भुंक्ते व्यवहारेऽपि शान्तधीः ॥५९॥

अन्वयः-शान्तधीः व्यवहारे अपि सुखम् आस्ते; सुखम् शेते सुखम् आयाति (सुखम्) च याति; सुखम् वक्ति, सुखम् भुंक्ते ॥ ५९ ॥

प्रारब्धके अनुसार व्यवहारके विषें वर्तमानभी आत्मनिष्ठा बुद्धिवाला ज्ञानी सुखपूर्वक बैठता है सुखपूर्वक शयन करता है, सुखपूर्वक आता है, सुखपूर्वक जाता है, सुखपूर्वक कहता है तथा सुखपूर्वकही भोजन करता है अर्थात् संपूर्ण इंद्रियोंके व्यापारको करता है परंतु आसक्त नहीं होता है क्योंकि उसका चित्त तो ब्रह्माकार होता है ॥ ५९ ॥

स्वभावाद्यस्य नैवार्तिर्लोकवद्व्यवहारिणः । महाह्रद इवाक्षोभ्यो गतक्लेशः स शोभते ॥ ६० ॥

अन्वयः--व्यवहारिणः यस्य स्वभावात् लोकवत् आर्तिः नैव (भवति किंतु) सः महाह्रदः इव अक्षोभ्यः गतक्लेशः शोभते ॥ ६० ॥

व्यवहार करते हुएभी ज्ञानीको स्वभावसेही संसारी पुरुषकी समान खेद नहीं होता है किंतु वह

ज्ञानी बडे जलके सरोवरकी समान चलायमान

नहीं होता है और निर्विकार स्वरूपमें शोभायमान होता है ॥ ६० ॥

निवृत्तिरपि मूढस्य प्रवृत्तिरुपजायते । प्रवृत्तिरपि धीरस्य निवृत्तिफलभागिनी ॥ ६१ ॥

अन्वयः—मूढस्य निवृत्तिः अपि प्रवृत्तिः उपजायते धीरस्य प्रवृत्तिः अपि निवृत्तिफलभागिनी (भवति) ॥ ६१ ॥

मूढकी निवृत्ति कहिये बाह्येंद्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करनाभी प्रवृत्तरूपही होता है, क्योंकि उसके अहंकारादि दूर नहीं होते हैं और ज्ञानीकी सांसारिक व्यवहारमें प्रवृत्तिभी निवृत्ति रूपही होती है क्योंकि ज्ञानीको अहं करोमि ऐसा अभिमान नहीं होता है ॥ ६१ ॥

परिग्रहेषु वैराग्यं प्रायो मूढस्य दृश्यते । देहे विगलिताशस्य क रागः क विरागता ॥ ६२ ॥

अन्वयः—मूढस्य प्रायः परिग्रहेषु वैराग्यम् दृश्यते; देहे विगलिताशस्य क्व रागः (स्यात्) क्व विरागिता (स्यात् ॥ ६२ ॥

जो मूर्ख देहाभिमानी पुरुष है वही मोक्षकी इच्छासे धन, धाम, स्त्री, पुत्रादिकोंका त्याग करता है और जिसका देहाभिमान दूर हो गया है ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषका स्त्रीपुत्रादिके विषें न राग होता है, न विराग होता है ॥ ६२ ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिर्मूढस्य सर्वदा । भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्यादृष्टरूपिणी ॥ ६३ ॥

अन्वयः—मूढस्य दृष्टिः सर्वदा भावनाभावनासक्ता (भवति) स्वस्थस्य तु सा भाव्यभावनया अदृष्टरूपिणी (भवति) ॥ ६३ ॥

मूर्ख देहाभिमानी पुरुषकी दृष्टि सर्वदा संकल्प और विकल्पके विषें आसक्त होती है और आत्मस्वरूपके विषें स्थित ज्ञानीकी दृष्टि यद्यपि संकल्पविकल्पयुक्तसी दीखती है परंतु तथापि संकल्पविकल्पके लेपसे शुद्ध रहती है, क्योंकि ज्ञानीको अहं करोमि ऐसा अभिमान नहीं होता है ॥ ६३ ॥

सर्वारम्भेषु निष्कामो यश्चरेद्बालव-
न्मुनिः। न लेपस्तस्य शुद्धस्य क्रिय-
माणेऽपि कर्मणि ॥ ६४ ॥

अन्वयः—यः मुनिः बालवत् सर्वारम्भेषु निष्कामः चरेत् तस्य शुद्धस्य कर्मणि क्रियमाणे अपि लेपः न (भवति) ॥ ६४ ॥

तहाँ वादी शंका करता है कि, यदि ज्ञानी संकल्प विकल्प करके क्रिया करता है तो उसकी द्वैतबुद्धि क्यों नहीं होती है? तिसका समाधान करतेहैं कि जो ज्ञानी पुरुष बालककी समान निष्काम होकर प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए कर्मोंके विषें प्रवृत्त होता है उस निरंहकार ज्ञानीको कर्म करनेपरभी कर्तृत्वदोष नहीं लगता है क्योंकि उसको तो कर्तापनेका अभिमानही नहीं होता ॥ ६४ ॥

स एव धन्य आत्मज्ञः सर्वभावेषु
यःसमः। पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जि-

घ्रन्नश्नन्निस्तर्षमानसः ॥ ६५ ॥

अन्वयः-सः एव आत्मज्ञः धन्यः यः सर्वभावेषु समः (भवति अत एव सः) पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् (अपि) निस्तर्षमानसः (भवति) ॥ ६५ ॥

वही धैर्यवान् ज्ञानी धन्य है; जो संपूर्ण भावोंमें समानबुद्धि रखता है इस कारणही वह देखता हुआ, श्रवण करता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ और भोजन करता हुआभी सब प्रकारकी तृष्णार-हित मनवाला होता है ॥ ६५ ॥

क्व संसारः क्व चाभासः क्व साध्यं
क्व च साधनम् । आकाशस्येव धी-
रस्य निर्विकल्पस्य सर्वदा ॥ ६६ ॥

अन्वयः-आकाशस्य इव सर्वदा निर्विकल्पस्य धीरस्य संसारः क्व आभासः च क्व साध्यम् क्व साधनम् च क्व ॥ ६६ ॥

जो धैर्यवान् ज्ञानी है, वह संपूर्ण संकल्पविकल्प-रहित होता है, उसको संसार कहां ? और संसारका भान कहां ? और स्वर्गादिसाध्य कहां ? तथा यज्ञ

आदि साधन कहां ? क्योंकि वह सदा आकाशवत् निर्लेप और कल्पनारहित होता है ॥ ६६ ॥

स जयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरस-
विग्रहः । अकृत्रिमोऽनवच्छिन्ने स-
माधिर्यस्य वर्त्तते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—पूर्णस्वरसविग्रहः सः अर्थसंन्यासी जयति यस्य अनवच्छिन्ने अकृत्रिमः समाधिः वर्त्तते ॥ ६७ ॥

पूर्ण स्वभाववाला है स्वरूप जिसका ऐसे अर्थ कहिये दृष्ट और अदृष्ट फलको त्यागनेवालेकी जय (सर्वोपरि उन्नति) होती है, जिसका पूर्णस्वरूप आत्माके विषे स्वाभाविक समाधि होती है ॥ ६७ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन ज्ञाततत्त्वो महा-
शयः । भोगमोक्षनिराकांक्षी सदा
सर्वत्र नीरसः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—अत्र बहुना उक्तेन किम् ? (यतः) ज्ञाततत्त्वः महाशयः भोगमोक्षनिराकांक्षी सदा सर्वत्र नीरसः (भवति) ॥ ६८ ॥

ज्ञानी पुरुषके अनेक प्रकारके लक्षण हैं उनका पूर्णरीतिसे तो वर्णन करना कठिन है, परन्तु ज्ञानी पुरुषका एक साधारण लक्षण यह है कि यहां ज्ञानीके बहुत लक्षण कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, केवल साधारण लक्षण यह है कि, ज्ञानी आत्मतत्त्वका जाननेवाला, आत्मस्वरूपके विषें मग्न, भोग और मोक्षकी इच्छासे रहित तथा सदा याग आदि साधनोंके विषें प्रीति न करनेवाला होता है ॥ ६८ ॥

महदादि जगद्द्वैतं नाममात्रविजृम्भितम् । विहाय शुद्धबोधस्य किं कृत्यमवशिष्यते ॥ ६९ ॥

अन्वयः—द्वैतम् नाममात्रविजृम्भितम् महदादि जगत् विहाय शुद्धबोधस्य किम् कृत्यम् अवशिष्यते ॥ ६९ ॥

द्वैतरूपसे भासनेवाले, नाममात्रही भिन्नरूपसे भासमान, महत्तत्त्व आदि जगत्के विषें कल्पनाको दूर करके स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप ज्ञानीको क्या कोई

कार्य करना बाकी रहताहै ? अर्थात् कोई कार्य करना नहीं रहता है ॥ ६९ ॥

भ्रमभूतमिदं सर्वं किंचिन्नास्तीति निश्चयी । अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेनैव शाम्यति ॥ ७० ॥

अन्वयः—इदम् सर्वम् भ्रमभूतम् (परमार्थतः) किञ्चित् न अस्ति इति निश्चयी अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभावेन एव शाम्यति ॥ ७० ॥

अधिष्ठानका साक्षात्कार होनेपर यह संपूर्ण विश्व भ्रममात्र है, परमार्थदृष्टिसे कुछभी नहीं है, इस प्रकार जिसका निश्चय हुआ है और स्वप्रकाश चेतनस्वरूप तथा स्वरूपको साक्षात्कारसे दूर हो गया है अज्ञानरूप मल जिसका ऐसा ज्ञानी स्वभावसेही शांतिको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावमपश्यतः । क्व विधिः क्व च वैराग्यं क्व त्यागः क्व शमोऽपि वा ॥ ७१ ॥

अन्वयः—शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावम् अपश्यतः (ज्ञानिनः) विधिः क्व वैराग्यम् क्व त्यागः क्व अपि वा शमः च क्व ॥ ७१ ॥

शुद्ध स्फुरणरूप अर्थात् स्वप्रकाशचेतनस्वरूप और दृश्य पदार्थोंकोभी न देखनेवाले ज्ञानीको किसी कर्मके करनेकी विधि कहां ? और विषयोंसे वैराग्य कहां ? और त्याग कहां ? तथा शांतिभी करना कहां ? यह सब तो तब हो सकता है जब सांसारिक पदार्थोंके विषें दृष्टि होती है ॥ ७१ ॥

स्फुरतोऽनन्तरूपेण प्रकृतिं च न
पश्यतः । क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः
क्व हर्षः क्व विषादता ॥ ७२ ॥

अन्वयः—अनंतरूपेण स्फुरतः प्रकृतिम् च न पश्यतः (ज्ञानिनः) बंधः क्व मोक्षः क्व हर्षः क्व वा विषादता च क्व ॥ ७२ ॥

जो ज्ञानी है वह अनंतरूप करके भासता है और आत्माको जानता है और देहादिके विषें दृष्टि नहीं लगाता है, उसको संसारका बंधन नहीं होता है,

मोक्षकी इच्छा नहीं होती है, हर्ष नहीं होता है और विषादभी नहीं होता है ॥ ७२ ॥

बुद्धिपर्यंतसंसारे मायामात्रं विवर्तते । निर्ममो निरहंकारो निष्कामः शोभते बुधः ॥ ७३ ॥

अन्वयः--बुद्धिपर्यंतसंसारे मायामात्रम् विवर्त्तते (अतः) बुधः निर्ममः निरहङ्कारः निष्कामः शोभते ॥ ७३ ॥

यह जगत् अज्ञानसे भासता है और ज्ञानसे जब मायामात्र (अज्ञान) निवृत्त हो जाता है तब ज्ञानस्वरूप आत्माही शेष रहता है इस कारण ज्ञानीको इस संसारमें ममता अहंकार तथा इच्छा नहीं होती है, इस कारण ब्रह्माकारवृत्तिकरके अत्यंत शोभायमान होता है ॥ ७३ ॥

अक्षयं गतसन्तापमात्मानं पश्यतो मुनेः । क्व विद्या क्व च वा विश्वं क्व देहोऽहं ममेति वा ॥७४॥

अन्वयः–अक्षयम् गतसन्तापम् आत्मानम् पश्यतः मुनेः विद्या क्व विश्वम् क्व देहः वा अहम् मम इति च क्व ॥ ७४ ॥

अविनाशी संतापरहित ऐसे आत्मस्वरूपका जिसको ज्ञान हुआ है ऐसे ज्ञानीको विद्या (शास्त्र) कहां ? और विश्व कहां ? और देह कहां ? तथा अहं-ममभाव कहां ? क्योंकि उसको आत्मासे भिन्न अन्य स्फुरणही नहीं होता है ॥ ७४ ॥

निरोधादीनि कर्माणि जहाति ज-
डधीर्यदि। मनोरथान्प्रलापांश्च क-
र्तुमाप्नोत्यतत्क्षणात् ॥ ७५ ॥

अन्वयः–जडधीः यदि निरोधादीनि कर्माणि जहाति (तर्हि) अतत्क्षणात् मनोरथान् प्रलापान् च कर्त्तुम् आप्नोति ॥ ७५ ॥

जो मूढबुद्धि देहाभिमानी पुरुष है वह अति परि-श्रम करके मनका निरोध समाधिके छूटतेही उसका मन फिर तुरंतही अनेक प्रकारसे संकल्प विकल्प करने लगता है और प्रलाप आदि संपूर्ण व्यापारोंको

करने लगता है इस कारण ज्ञानके विना निरोध कुछ काम नहीं देता है ॥ ७५ ॥

मन्दः श्रुत्वापि तद्वस्तु न जहाति विमूढताम् । निर्विकल्पो बहिर्यत्ना-दन्तर्विषयलालसः ॥ ७६ ॥

अन्वयः— मन्दः तत् वस्तु श्रुत्वा अपि विमूढताम् न जहाति (अतः मूढः) यत्नात् बहिः निर्विकल्पः अन्तः विषयलालसः (भवति)॥७६॥

जो देहाभिमानी मूढ पुरुष है वह वेदांतशास्त्रके अनेक ग्रंथोंके द्वारा आत्मस्वरूपको सुनकरभी देहाभिमानको नहीं त्यागता है. यद्यपि अति परिश्रम करके ऊपरसे त्याग दिखाता है परंतु मनमें अनेक विषयवासना रहती है ॥ ७६ ॥

ज्ञानाद्गलितकर्मा यो लोकदृष्ट्यापि कर्मकृत् । नाप्नोत्यवसरं कर्त्तुं वक्तु-मेव न किञ्चन ॥ ७७ ॥

अन्वयः-यः ज्ञानात् गलितकर्मा (सः) लोकदृष्ट्या कर्मकृत् अपि किञ्चन कर्तुम् न वक्तुम् एव (च) अवसरम् न आप्नोति ॥ ७७ ॥

ज्ञानी लोकाचारके अनुसार कर्म करता है परंतु ज्ञानके प्रतापसे कर्मफलकी इच्छा नहीं करता है क्योंकि वह केवल आत्मस्वरूपके विषें लीन रहता है तिससे उसको कर्म करनेका अथवा कहनेका अवसर नहीं मिलता है ॥ ७७ ॥

क्व तमः क्व प्रकाशो वा हानं क्व च न किञ्चन । निर्विकारस्य धीरस्य निरातङ्कस्य सर्वदा ॥ ७८ ॥

अन्वयः-सर्वदा निरातंकस्य निर्विकारस्य धीरस्य तमः क्व वा प्रकाशः क्व हानम् च क्व (तस्य) किञ्चन न भवति ॥ ७८ ॥

जो ज्ञानी है वह निर्विकार होता है, उसको काल आदिका भय नहीं होता है, उसको अंधकारका भान नहीं होता है, प्रकाशका भान नहीं होता है, उसको किसी बातकी हानि नहीं होती है, भय नहीं होता है, वह सर्वदा मुक्त होता है ॥ ७८ ॥

क धैर्यं क विवेकित्वं क निरातंकतापि वा । अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभावस्य योगिनः ॥ ७९ ॥

अन्वयः—अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभावस्य योगिनः धैर्यम् क विवेकित्वम् क अपि च निरातङ्कता क ॥ ७९ ॥

ज्ञानीका स्वभाव किसीके ध्यानमें नहीं होता है, क्योंकि ज्ञानी स्वभावरहित होता है उसका धीरजपना ज्ञानीपना तथा निर्भयपना नहीं होता है ॥ ७९ ॥

न स्वर्गो नैव नरको जीवन्मुक्तिर्न चैव हि । बहुनात्र किमुक्तेन योगदृष्ट्या न किञ्चन ॥ ८० ॥

अन्वयः—अत्र बहुना उक्तेन किम्, योगदृष्ट्या स्वर्गः न नरकः न एव हि जीवन्मुक्तिः च एव न, किञ्चन न (भवति) ॥ ८० ॥

जिस ज्ञानीकी सर्वत्र आत्मदृष्टि हो जाती है उसको स्वर्ग, नरक और मुक्ति आदिका भेद नहीं होता है अर्थात् अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है, ज्ञानी पुरुषको किसी प्रकारकाभी भेद नहीं भासताहै॥ ८० ॥

नैवं प्रार्थयते लाभं नालाभेनानुशोच-
ति । धीरस्य शीतलं चित्तममृतेनैव
पूरितम् ॥ ८१ ॥

अन्वयः-(धीरः) लाभम् प्रार्थयते न एवम् अलाभेन अनुशोचति न (अतः) धीरस्य चित्तम् अमृतेन पूरितम् शीतलम् एव (भवति)॥८१॥

जो ज्ञानी है वह लाभकी इच्छा नहीं करता है और लाभ नहीं होवे तौ शोक नहीं करता है और इस कारणही धैर्यवान् ज्ञानीका चित्त ज्ञानामृतसे परिपूर्ण और इसी कारण शीतल कहिये तापत्रयरहित होता है ॥ ८१ ॥

न शान्तं स्तौति निष्कामो न दुष्ट-
मपि निंदति । समदुःखसुखस्तृप्तः
किंचित्कृत्यं न पश्यति ॥ ८२ ॥

अन्वयः-निष्कामः शांतम् न स्तौति; दुष्टम् अपि न निंदति; तृप्तः (सन्) समदुःखसुखः (भवति) (निष्कामत्वात्) किञ्चित् कृत्यम् न पश्यति ॥ ८२ ॥

जो पुरुष कामनाशून्य ज्ञानी है वह किसी शांत पुरुषको देखकर प्रशंसा नहीं करता है और दुष्टको देखकर निंदा नहीं करता है क्योंकि वह अपने ज्ञान-रूपी अमृतसे तृप्त होता है तिस कारण सुखदुःखकी कल्पना नहीं करता है, तथा किसी कृत्यको नहीं देखता है ॥ ८२ ॥

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दि-
दिदृक्षति । हर्षामर्षविनिर्मुक्तो न
मृतो न च जीवति ॥ ८३ ॥

अन्वयः--हर्षामर्षविनिर्मुक्तः धीरः संसारम् न द्वेष्टि; आत्मानम् न दिदृक्षति न मृतः (भवति) न च जीवति ॥ ८३ ॥

जो धैर्यवान् अर्थात् ज्ञानी है वह संसारका द्वेष नहीं करता है तथा आत्माको देखनेकी इच्छा नहीं करता है, क्योंकि वह स्वयंही आत्मस्वरूप है इस कारण उसको हर्ष तथा शोक नहीं होता है और जन्म-मरणरहित होता है ॥ ८३ ॥

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विषयेषु च । निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपि निराशः शोभते बुधः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—पुत्रदारादौ निःस्नेहः विषयेषु च निष्कामः स्वशरीरे अपि निश्चिन्तः निराशः, बुधः शोभते ॥ ८४ ॥

पुत्र स्त्री आदिके विषें प्रीति न करनेवाला, विषयोंके भोगकी इच्छारहित और अपने शरीरके विषें भी भोजनादिककी चिन्ता न करनेवाला, इस प्रकार सर्वत्र आशारहित ज्ञानी शोभाको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥

तुष्टिः सर्वत्र धीरस्य यथापतितवर्तिनः । स्वच्छन्दं चरतो देशान्यत्रास्तमितशायिनः ॥ ८५ ॥

अन्वयः—यत्रास्तमितशायिनः देशान् स्वच्छन्दम् चरतः यथापतितवर्तिनः धीरस्य सर्वत्र तुष्टिः (भवति) ॥ ८५ ॥

जो ज्ञानी पुरुष है, उसको जो कुछ प्रारब्धानुसार मिलजाय उससेही वह वर्ताव करता है और परम संतोषको प्राप्त होता है, तदनन्तर अपनी इच्छा जिध-

रको उठ जाती है उनही देशोंमें विचरता है और जहांही सूर्य अस्त होय तहांही शयन करताहै॥८५॥

पततूदेतु वा देहो नास्य चिन्ता महात्मनः । स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृतेः ॥ ८६ ॥

अन्वयः– देहः पततु वा उदेतु, स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशेषसंसृतेः महात्मनः अस्य चिन्ता न (भवति) ॥ ८६ ॥

देह नष्ट होय अथवा रहे परंतु अपने स्वरूपरूपी भूमिके विश्रामकरके संपूर्ण संसारको भूलनेवाले ज्ञानीको इस देहकी चिन्ता नहीं होती है ॥ ८६ ॥

अकिञ्चनः कामचारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः । असक्तः सर्वभावेषु केवलो रमते बुधः ॥ ८७ ॥

अन्वयः- आकिञ्चनः कामचारः निर्द्वन्द्वः छिन्नसंशयः सर्वभावेषु असक्तः बुधः केवलः रमते ॥ ८७ ॥

जो ज्ञानी है वह इकलाही आत्मस्वरूपके विषें

रमता है, कुछ पास नहीं रखता है, तथापि अपनी

इच्छानुसार वर्ता करता है, ज्ञानीको संशय नहीं होता है और संपूर्ण विषयोंसे विरक्त रहता है ॥ ८७ ॥

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्म-
काञ्चनः । सुभिन्नहृदयग्रन्थिर्विनिर्धूत-
तरजस्तमः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—निर्ममः समलोष्टाश्मकाञ्चनः सुभिन्नहृदयग्रन्थिः विनिर्धूतरजस्तमः धीरः शोभते ॥ ८८ ॥

ममताका त्यागनेवाला, मिट्टी, पत्थर और सुवर्णको समान माननेवाला और दूर हो गयी है हृदयकी अज्ञानरूपी ग्रंथि जिसकी ऐसा और दूर हो गये हैं रज और तमगुण जिसके ऐसा ज्ञानी शोभाको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

सर्वत्रानवधानस्य न किंचिद्वासना
हृदि । मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलना
केन जायते ॥ ८९ ॥

अन्वयः—सर्वत्र अनवधानस्य हृदि किञ्चित् वासना न (भवति) (अतः) मुक्तात्मनः वितृप्तस्य (तस्य) केन तुलना जायते ॥ ८९ ॥

जिसकी संपूर्ण विषयोंमें आसक्ति नहीं है और जिसके हृदयके विषें किंचिन्मात्रभी वासना नहीं है और जो आत्मानंदके विषें तृप्त है, ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषकी समान त्रिलोकीमें कौन हो सकता है ॥ ८९ ॥

जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति । ब्रुवन्नपि न च ब्रूते कोऽन्यो निर्वासनादृते ॥ ९० ॥

अन्वयः-(यः) जानन् अपि न जानाति, पश्यन् अपि न पश्यति ब्रुवन् अपि च न ब्रूते; (सः) निर्वासनात् ऋते अन्यः कः ? ॥९०॥

जो जानता हुआभी नहीं जानता है, देखता हुआभी नहीं देखता है, बोलता हुआभी नहीं बोलता है, ऐसा पुरुष ज्ञानीके सिवाय जगत्‌में और दूसरा कौन है, अर्थात् कोई नहीं है क्योंकि ज्ञानीको अभिमान तथा वासना नहीं होती है ॥ ९० ॥

भिक्षुर्वा भूपतिर्वापि यो निष्कामः स शोभते । भावेषु गलिता यस्य शोभनाशोभना मतिः ॥ ९१ ॥

अन्वयः—यस्य भावेषु शोभनाशोभना मतिः गलिता, (एतादृशः यः) निष्कामः सः भिक्षुः वा अपि वा भूपतिः शोभते ॥ ९१ ॥

जिस ज्ञानीकी शुभ पदार्थोंमें इच्छा बुद्धि नहीं होती है और अशुभ पदार्थोंमें द्वेषबुद्धि नहीं होती है ऐसा जो कामनारहित ज्ञानी है वह राजा हो तो विदेह (जनक) की समान शोभित होता है और भिक्षु होय तो परम ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्यमुनिकी समान शोभाको प्राप्त होता है क्यों कि आत्मानंदके विषें मग्न पुरुषको राज्य बंधन नहीं करता है और त्याग मोक्षदायक नहीं होता है ॥ ९१ ॥

क्व स्वाच्छन्द्यं क्व संकोचः क्व वा तत्त्वविनिश्चयः । निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः ॥ ९२ ॥

अन्वयः--निर्व्याजार्जवभूतस्य चरितार्थस्य योगिनः स्वाच्छन्द्यम् क सङ्कोचः क वा तत्त्वनिश्चयः क ॥ ९२ ॥

जिस पुरुषका मन कपटरहित और कोमलतायुक्त है और जिसने आत्मज्ञानरूपी कार्यको सिद्ध किया है, ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषको स्वाधीनपना नहीं होता है और पराधीनपनाभी नहीं होता है, तत्त्वका निश्चय करनाभी नहीं होता है क्योंकि उसका देहाभिमान दूर हो जाता है ॥ ९२ ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्त्तिना । अन्तर्यदनुभूयेत तत्कथं कस्य कथ्यते ॥ ९३ ॥

अन्वयः--आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतार्तिना (ज्ञानिना) अन्तः यत् अनुभूयेत तत् कथम् कस्य कथ्यते ॥ ९३ ॥

जो पुरुष आत्मस्वरूपके विषें विश्रामरूप अमृतका पान करके तृप्त हुआ है और आशामात्र निवृत्त हो गई है तथा जिसके भीतरकी पीडा शांत

हो गई है ऐसा ज्ञानी अपने अंतःकरणके विषें जो अनुभव करता है, उसको प्राणी किस प्रकार कह सकता है और उस अनुभवको किसको कहा जाय ? क्योंकि इसका अधिकारी दुर्लभ है ॥ ९३ ॥

सुप्तोऽपि न सुषुप्तौ च स्वप्नेऽपि शयितो न च । जागरेऽपि न जागर्ति धीरस्तृप्तः पदे पदे ॥ ९४ ॥

अन्वयः–पदे पदे तृप्तः धीरः सुषुप्तौ अपि च न सुप्तः, स्वप्ने अपि च न शयितः, जागरे अपि न जागर्ति ॥ ९४ ॥

ज्ञानीकी सुषुप्ति अवस्था दीखती है परंतु ज्ञानी सुषुप्तिके वशीभूत नहीं होता है, स्वप्नावस्था भासती परंतु ज्ञानी शयन नहीं करता है किंतु साक्षिरूप रह-ता है और जाग्रदवस्था भासती है परंतु ज्ञानी जाग्र-दवस्थाके विकारोंसे अलग रहता है क्योंकि यह तो न अवस्था बुद्धिकी है और जो बुद्धिसे पर है और आत्मानंदसे तृप्त है ॥ ९४ ॥

ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्तः सेंद्रियो-ऽपिनिरिन्द्रियः । सुबुद्धिरपि निर्बुद्धिः साहङ्कारोऽनहंकृती ॥ ९५ ॥

अन्वयः—ज्ञः सचिन्तः अपि निश्चिन्तः (भवति); सेन्द्रियः अपि निरिन्द्रियः (भवति) सुबुद्धिः अपि निर्बुद्धिः (भवति); साहंकारः अपि निरहंकृतिः (भवति) ॥ ९५ ॥

ज्ञानीको चिंता है ऐसा लोकोंके देखनेमें आता है परंतु ज्ञानी निश्चित होता है, ज्ञानी इंद्रियोंसहित दीखता है परंतु वास्तवमें ज्ञानी इंद्रियरहित होता है, व्यवहारमें ज्ञानी चतुर बुद्धिवाला दीखता है, परंतु ज्ञानी बुद्धिरहित होता है और ज्ञानी अहंकारयुक्तसा दीखता है परंतु ज्ञानीको अहंकारका लेशभी नहीं होता है ॥ ९५ ॥

न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तो न सङ्गवान् । न मुमुक्षुर्न वा मुक्तो न किञ्चिन्न च किञ्चन ॥ ९६ ॥

अन्वयः-(ज्ञानी) न सुखी, वा न च दुःखी, न विरक्तः न सङ्गवान्, न मुमुक्षुः वा न मुक्तः; न किञ्चित्; न च किञ्चन ॥ ९६ ॥

ज्ञानी सुखी नहीं होता है, दुःखी नहीं होता है, विरक्त नहीं होता है, आसक्त नहीं होताहै; मोक्षकी इच्छा नहीं करता है, सद्रूप, अनिर्वचनीय होता है ॥ ९६ ॥

विक्षेपेऽपि न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान् । जाड्येऽपि न जडो धन्यः पाण्डित्येऽपि न पण्डितः ॥ ९७ ॥

अन्वयः--धन्यः विक्षेपे अपि विक्षिप्तः न, समाधौ समाधिमान् न, जाड्ये अपि जडः न, पाण्डित्ये अपि पण्डितः न ॥ ९७ ॥

ज्ञानीका विक्षेप दीखता है परन्तु ज्ञानी विक्षिप्त नहीं होता है; ज्ञानीकी समाधि दीखती है परंतु ज्ञानी समाधि नहीं करता है, ज्ञानीके विषें जडपना दीखताहै परंतु ज्ञानी जड नहीं होता है तथा ज्ञानीमें

पंडितपना दीखता है परंतु ज्ञानी पंडित नहीं होता है क्योंकि यह संपूर्ण विकार देहाभिमानीके विषें रहते हैं ॥ ९७ ॥

मुक्तो यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्य-
निर्वृतः । समः सर्वत्र वैतृष्ण्यान्न स्मर-
त्यकृतं कृतम् ॥ ९८ ॥

अन्वयः--यथास्थितिस्वस्थः कृतकर्त्तव्यनिर्वृतः सर्वत्र समः मुक्तः वैतृष्ण्यात् कृतम् अकृतम् न स्मरति ॥ ९८ ॥

जैसी अवस्था प्राप्त होय उसमेंही स्वस्थ रहनेवाला और किये हुए और कर्तव्यकर्मोंके विषें अहंकार और उद्वेग न करनेवाला अर्थात् संतोषयुक्त तथा सर्वत्र आत्मदृष्टि करनेवाला जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष तृष्णाके न होनेसे यह कार्य किया, यह नहीं किया, ऐसा स्मरण नहीं करता है ॥ ९८ ॥

न प्रीयते वन्द्यमानो निंद्यमानो न
कुप्यति । नैवोद्विजति मरणे जीवने
नाभिनन्दति ॥ ९९ ॥

अन्वयः-(ज्ञानी) वंद्यमानः प्रीयते न निन्द्यमानः कुप्यति न, मरणे उद्विजाति न एव, जीवने अभिनन्दति न ॥ ९९ ॥

जो ज्ञानी है उसकी कोई प्रशंसा करे तौ प्रसन्न नहीं होता है और निंदा करे तौ कोप नहीं करता है तिसी प्रकार मृत्युभी सामने आता दीखे तोभी ज्ञानी घबडता नहीं है और बहुत वर्षोंपर्यंत जीवें तोभी प्रसन्न नहीं होता है ॥ ९९

न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्तधीः। यथा तथा यत्र तत्र सम एवावतिष्ठते ॥ १०० ॥

अन्वयः-उपशान्तधीः जनाकीर्णम् न धावति, (तथा) अरण्यम् न (धावति) किन्तु यत्र तत्र यथा तथा समः एव अवतिष्ठते॥ १००॥

जिस ज्ञानीकी वृत्ति शांत हो गई है वह जहां मनुष्योंकी सभा होय तहां जानेकी इच्छा नहीं करता है; तिसी प्रकार निर्जन स्थान जो वन तहांभी जानेकी इच्छा नहीं करता है, किंतु जिस समय जो स्थान मि-

ल जाय तहांही स्थिति करके निवास करता है क्यों कि नगरमें तथा वनमें ज्ञानीकी एक समान बुद्धि होती है अर्थात् ज्ञानीकी दृष्टिमें जैसा नगर है वैसाही वन होता है ॥ १०० ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकया सहितं शान्तिशतकं नामाष्टादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशतिकं प्रकरणम् १९.

तत्त्वविज्ञानसंदंशमादाय हृदयोदरात्। नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतो मया ॥ १ ॥

अन्वयः—मया हृदयोदरात् तत्त्वविज्ञानसंदंशम् आदाय नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतः ॥ १ ॥

श्रीगुरुके मुखते साधनसहित ज्ञानका श्रवण करके शिष्यको आत्मस्वरूपके विषें विश्राम प्राप्त हुआ,

तिसका सुख आठ श्लोकोंकरके वर्णन करते हैं । हे गुरो ! आपने तत्त्वज्ञानरूप सांडसीको लेकर अपने हृदयमेंसे नाना प्रकारके संकल्पविकल्परूप कांटेको दूर कर दिया ॥ १ ॥

क्क धर्मः क्क च वा कामः क्क चार्थः
क्क विवेकिता । क्क द्वैतं क्क च वाद्वैतं
स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ २ ॥

अन्वयः–स्वमहिम्नि स्थितस्य मे धर्मः क्क, वा कामः च क्क, अर्थः क्क विवेकिता च क्क, द्वैतं क्क वा अद्वैतम् च क्क ॥ २ ॥

हे गुरो ! धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारोंका फल तुच्छ है, इस कारण तिन धर्मादिरूप कांटेको दूर करके आत्मस्वरूपके विषें स्थितको प्राप्त हुआ जो मैं तिस मुझे द्वैत नहीं भासता है, इस कारणही मुझे अद्वैतविचारभी नहीं करना पडता है; क्योंकि "उत्तीर्णे तु परे पारे नौकायाः किं प्रयोजनम्" जब पारही

पार उतर गये तो फिर नौकाकी क्या आवश्यकता है ? इस कारण जब द्वैतका भानही नहीं है तो फिर अद्वैत विचार करनेसे फलही क्या ? ॥ २ ॥

क्क भूतं क्क भविष्यद्वा वर्त्तमानमपि क्क वा । क्क देशः क्क च वा नित्यं स्वम-हिम्नि स्थितस्य मे॥ ३ ॥

अन्वयः—नित्यम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे भूतम् क्क वा भविष्यत् क्क, अपि वा वर्त्तमानम् क्क, देशः क्क (अन्यत्) च वा क्क ॥ ३ ॥

नित्य आत्मस्वरूपके विषें स्थित जो मैं तिस मुझे भूतकाल कहां है, भविष्यत् काल कहां है, वर्तमानकाल कहां है, देश कहां है, तथा अन्य वस्तु कहां है ? ॥ ३ ॥

क्क चात्मा क्क च वानात्मा क्क शुभं क्का-शुभं तथा । क्क चिन्ता क्क च वाचिन्ता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ४ ॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य मे आत्मा क्क वा अनात्मा च क्क शुभम् क्क तथा अशुभम् क्क चिन्ता क्क वा अचिन्ता च क्क ॥ ४ ॥

आत्मस्वरूपके विषें स्थित जो मैं तिस मुझे आत्मा, अनात्मा, शुभ, अशुभ, चिंता और अचिंता यह नाना प्रकार भेद नहीं भासता है ॥ ४ ॥

क्व स्वप्नः क्व सुषुप्तिर्वा क्व च जागरणं तथा । क्व तुरीयं भयं वापि स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ५ ॥

अन्वयः—स्वमहिम्नि स्थितस्य मे स्वप्नः क्व वा सुषुप्तिः च क्व, तथा जागरणम् क्व, तुरीयम् अपि वा भयम् क्व ॥ ५ ॥

आत्मस्वरूपके विषें स्थित जो मैं तिस मेरी स्वप्नावस्था नहीं होती है, सुषुप्ति अवस्था नहीं है तथा जाग्रत् अवस्था नहीं होती है; क्योंकि यह तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, आत्माकी नहीं हैं, मेरी तुरीयावस्थाभी नहीं होती है तथा अंतःकरण धर्म जो भय आदि सोभी मुझे नहीं होता है ॥ ५ ॥

क्व दूरं क्व समीपं वा बाह्यं क्वाभ्यंन्तरं क्व वा । क्व स्थूलं क्व च वा सूक्ष्मं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ६ ॥

अन्वयः-स्वमहिम्नि स्थितस्य मे दूरम् क्व वा समीपम् क्व, बाह्यम् क्व वा आभ्यंतरम् क्व, स्थूलम् क्व वा सूक्ष्मम् च क्व ॥ ६ ॥

दूरपना, समीपपना, बाहरपना, भीतरपना, मोटापना तथा सूक्ष्मपना ये सब मेरे विषें नहीं हैं क्योंकि मैं तो सर्वव्यापी आत्मस्वरूपमें स्थित हूं ॥ ६ ॥

क्व मृत्युर्जीवितं वा क्व लोकाः क्वास्य क्व लौकिकम् । क्व लयः क्व समाधिर्वा स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥ ७ ॥

अन्वयः-स्वमहिम्नि स्थितस्य अस्य मे मृत्युः जीवितम् क्व, लोकाः क्व वा लौकिकम् क्व, लयः क्व, वा समाधिः क्व ॥ ७ ॥

आत्मस्वरूपके विषें स्थित जो मैं तिस मेरा मरण नहीं होता है, जीवन नहीं होता है, क्योंकि मैं तो त्रिकालमें सत्यरूप हूँ केवल आत्मामात्रको देखनेवाला जो मैं तिस मुझे भू आदि लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती है इसी कारण मुझे कोईभी कर्त्तव्य नहीं है; मैं पूर्णात्मा हूं, इस कारण मेरा लय वा समाधि नहीं होती है ॥ ७ ॥

अलं त्रिवर्गकथया योगस्य कथ-
याप्यलम् । अलं विज्ञानकथया
विश्रान्तस्य ममात्मनि ॥ ८॥

अन्वयः–आत्मनि विश्रांतस्य मम त्रिवर्गकथया योगस्य कथया अलम् विज्ञानकथया अपि अलम् ॥ ८ ॥

आत्माके विषें विश्रामको प्राप्त हुआ जो मैं तिस मुझे धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गकी चर्चासे कुछ प्रयोजन नहीं है, योगकी चर्चा करके कुछ प्रयोजन नहीं है, तथा ज्ञानकी चर्चा करनेसेभी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां
भाषाटीकया सहितमेकोनविंशतिकं
प्रकरणं समाप्तम् ॥ १९ ॥

अथ विंशतिकं प्रकरणम् २०.

क भूतानि क देहो वा केन्द्रियाणि क
वा मनः । क शून्यं क च नैराश्यं म-
त्स्वरूपे निरञ्जने ॥ १ ॥

अन्वयः--निरञ्जने मत्स्वरूपे भूतानि क्व वा देहः क्व, इन्द्रियाणि क्व वा मनः क्व, शून्यम् क्व, नैराश्यम् क्व च ॥ १ ॥

पूर्व वर्णन की हुई आत्मास्थिति जिसकी हो जाय जीवन्मुक्तकी दशाका इस प्रकरणमें चौदह श्लोकोंकरके वर्णन करते हैं कि, हे गुरो ! मै संपूर्ण उपाधिरहित हूं, इस कारण मेरे विषे पंचमहाभूत तथा इंद्रियें तथा मन नहीं है क्योंकि मैं चेतनस्वरूप हूं तिसी प्रकार शून्यपना और निराशपना भी नहीं है ॥१॥

क्व शास्त्रं क्वात्मविज्ञानं क्व वा निर्विषयं मनः। क्व तृप्तिः क्व वितृष्णात्वं गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥ २ ॥

अन्वयः--सदा गतद्वन्द्वस्य मे शास्त्रम् क्व, आत्मविज्ञानम् क्व, वा निर्विषयम् मनः क्व, तृप्तिः क्व; वितृष्णात्वम् क्व ॥ २ ॥

शास्त्राभ्यास करना, आत्मज्ञानका विचार करना, मनको जीतना, मनमें तृप्ति रखना और तृष्णाको दूर करना यह कोईभी मुझमें नहीं है, क्योंकि मैं द्वंद्वरहित हूं ॥ २ ॥

क्व विद्या क्व च वाविद्या क्वाहं क्वेदं मम क्व वा । क्व बन्धः क्व च वा मोक्षः स्वरूपस्य क्व रूपिता ॥ ३ ॥

अन्वयः—(मयि) विद्या क्व वा अविद्या च क्व, अहम् क्व इदम् क्व वा मम क्व, बंधः क्व वा मोक्षः च क्व, स्वरूपस्य रूपिता क्व ॥ ३ ॥

अहंकाररहित जो मैं हूं तिस मेरे विषें विद्या अविद्या मैं हूं. मेरा है यह है इत्यादि अभिमानके धर्म नहीं हैं तथा वस्तुका ज्ञान मेरे विषें नहीं है और बंध मोक्ष मेरे नहीं होते हैं मेरा रूपभी नहीं है; क्योंकि मैं चैतन्यमात्र हूं ॥ ३ ॥

क्व प्रारब्धानि कर्माणि जीवन्मुक्तिरपि क्व वा । क्व तद्विदेहकैवल्यं निर्विशेषस्यसर्वदा ॥ ४ ॥

अन्वयः—सर्वदा निर्विशेषस्य (मे) प्रारब्धानि कर्माणि क्व; वा जीवन्मुक्तिः अपि क्व, तद्विदेहकैवल्यम् क्व ॥ ४ ॥

सर्वदा निर्विशेष स्वरूप जो मैं तिस मेरे प्रारब्ध-कर्म नहीं होता है और जीवन्मुक्ति अवस्था तथा विदेहमुक्तिभी नहीं है क्योंकि मैं सर्वधर्मरहित हूं॥४॥

क कर्त्ता क च वा भोक्ता निष्क्रियं स्फुरणं क वा । कापरोक्षं फलं वा क निःस्वभावस्य मे सदा ॥ ५ ॥

अन्वयः-सदा निःस्वभावस्य मे कर्त्ता क वा भोक्ता क वा निष्क्रियम् स्फुरणम् क अपरोक्षम् क वा फलम् क ॥ ५ ॥

मैं सदा स्वभावरहित हूं, इस कारण मेरे विषें कर्त्तापना नहीं है, भोक्तापना नहीं है तथा विषयाकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यरूप फल नहीं है ॥ ५ ॥

क लोकः क मुमुक्षुर्वा क योगी ज्ञानवान् क वा । क बद्धः क च वा मुक्तः स्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥ ६ ॥

अन्वयः-अहमद्वये स्वस्वरूपे लोकः क वा मुमुक्षुः क, योगी क, ज्ञानवान् क, बद्धः क वा मुक्तः च क ॥ ६ ॥

आत्मरूप अद्वैत स्वरूपके होनेपर न लोक है, न मोक्षकी इच्छा करनेवाला हूं, न योगी हूं, न ज्ञानी हूं, न बंधन है, न मुक्ति है ॥ ६ ॥

क सृष्टिः क च संहारः क साध्यं क च साधनम् । क साधकः क सिद्धिर्वा स्वस्वरूपेऽहमद्वये ॥ ७ ॥

अन्वयः—अहम् अद्वये स्वस्वरूपे सृष्टिः क, संहारः च क, साध्यम् क, साधनम् च क, साधकः क वा सिद्धिः क ॥ ७ ॥

आत्मरूप अद्वैत स्वस्वरूपके होनेपर न सृष्टि है न कार्य है, न साधन है और न सिद्धि है, क्योंकि मैं सर्वधर्मरहित हूं ॥ ७ ॥

क प्रमाता प्रमाणं वा क प्रमेयं क च प्रमा । क किञ्चित्क न किञ्चिद्वा सर्वदा विमलस्य मे ॥ ८ ॥

अन्वयः—सर्वदा विमलस्य मे प्रमाणं वा प्रमाता क प्रमेयं क प्रमा च क किञ्चित् क न किञ्चित् क न किञ्चित् क ॥ ८ ॥

आत्मा उपाधिरहित है तिस आत्माके विषें प्रमाता प्रमाण तथा प्रमेय ये तीनों नहीं हैं और कुछ है अथवा कुछ नहीं है, ऐसी कल्पनाभी नहीं है ॥ ८ ॥

क्व विक्षेपः क्व चैकाग्र्यं क्व निर्बोधः क्व मूढता । क्व हर्षः क्व विषादो वा सर्वदा निष्क्रियस्य मे ॥ ९ ॥

अन्वयः-सर्वदा निष्क्रियस्य मे विक्षेपः क्व ऐकाग्र्यं च क्व निर्बोधः क्व मूढता क्व हर्षः क्व विषादः क्व ॥ ९ ॥

मैं सदा निर्विकार आत्मस्वरूप हूं इस कारण मेरे विषें विक्षेप तथा एकाग्रता ज्ञानीपना, मूढता, हर्ष और विषाद ये विकार नहीं हैं ॥ ९ ॥

क्व चैष व्यवहारो वा क्व च सा परमार्थता । क्व सुखं क्व च वा दुःखं निर्विमर्शस्य मे सदा ॥ १० ॥

अन्वयः-सदा निर्विमर्शस्य मे एषः व्यवहारः क्व वा स परमार्थता च क्व, सुखं च क्व वा दुःखं च क्व ॥ १० ॥

मैं सदा संकल्पविकल्परहित आत्मस्वरूप हूं इस कारण मेरे विषें व्यवहारावस्था नहीं है परमार्थावस्था नहीं है और सुख नहीं है तथा दुःखभी नहीं है॥ १०॥

क्व माया क्व च संसारः क्व प्रीति-
र्विरतिः क्व वा । क्व जीवः क्व च त-
द्ब्रह्म सर्वदा विमलस्य मे ॥ ११ ॥

अन्वयः--सर्वदा विमलस्य मे माया क्व संसारः च प्रीतिः क्व वा विरतिः क्व जीवः क्व तत् ब्रह्म च क्व ॥ ११ ॥

मैं सदा शुद्ध उपाधिरहित आत्मास्वरूप हूं, इस कारण मेरे विषें माया नहीं है, संसार नहीं है, प्रीति नहीं है, वैराग्य नहीं है, जीवभाव नहीं है तथा ब्रह्म-भावभी नहीं है ॥ ११ ॥

क्व प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा क्व मुक्तिः क्व च
बन्धनम् । कूटस्थनिर्विभागस्य स्वस्थ-
स्य मम सर्वदा ॥ १२ ॥

अन्वयः--कूटस्थनिर्विभागस्य सदा स्वस्थस्य मम प्रवृत्तिः क्व वा निवृत्तिः क्व, मुक्ति क्व बन्धनम् च क्व ॥ १२ ॥

निर्विकार भेदरहित कूटस्थ और सर्वदा स्वस्थ आत्मस्वरूप जो मैं हूं तिस मेरे विषें प्रवृत्ति नहीं है, मुक्ति नहीं है तथा बंधनभी नहीं है ॥ १२ ॥

क्वोपदेशः क्व वा शास्त्रं क्व शिष्यः क्व च वा गुरुः । क्व चास्ति पुरुषार्थो वा निरुपाधेः शिवस्य मे ॥ १३ ॥

अन्वयः—निरुपाधेः शिवस्य मे उपदेशः क्व शास्त्रं क्व शिष्यः क्व वा गुरुः क्व वा पुरुषार्थः क्व च अस्ति ॥ १३ ॥

उपाधिशून्य नित्यानंदस्वरूप जो मैं हूं तिस मेरे अर्थ उपदेश नहीं है, शास्त्र नहीं है, शिष्य नहीं है, गुरु नहीं है तथा परम पुरुषार्थ जो मोक्ष सोभी नहीं है ॥ १३ ॥

क्व चास्ति क्व च वा नास्ति क्वास्ति चैकं क्व च द्वयम् । बहुनात्र किमुक्तेन किञ्चिन्नोत्तिष्ठते मम ॥ १४ ॥

अन्वयः-(मम) अस्ति च क्व, वा न आस्ति च क्व एकं च क्व अस्ति, द्वयं च क्व, इह बहुना उक्तेन किम्, मम किञ्चित् न उत्तिष्ठते ॥ १४ ॥

मैं आत्मस्वरूप हूं इस कारण मेरे विषें आस्तिपना नहीं है, नास्तिपना नहीं है, एकपना नहीं है, द्वैतपना नहीं है इस प्रकार कल्पित पदार्थोंकी वार्ता करोडों वर्षोंपर्यंत कहूं तबभी पार नहीं मिल सकता, इस कारण संक्षेपसे कहता हूं कि, मेरे विषें किसी कल्पनाकाभी आभास नहीं होता है, क्योंकि मैं एकरस चेतनस्वरूप हूं ॥ १४ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां भाषाटीकासहितं विंशतिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २० ॥

अथैकविंशतिकं प्रकरणम् २१ ।

विंशतिश्चोपदेशे स्युः श्लोकाश्च पञ्चविंशतिः । सत्यात्मानुभवोल्लासे उपदेशे चतुर्दश ॥ १ ॥

अन्वयः--उपदेशे विंशतिः च स्युः । सत्यात्मानुभवोल्लासे च पञ्च-विंशतिः उपदेशे चतुर्दश ॥ १ ॥

अब ग्रंथकर्ताने प्रकरणमें ग्रंथकी श्लोकसंख्या और विषय दिखाये हैं । गुरूपदेशनामक प्रथम प्रकरणमें २० श्लोक हैं । शिष्यानुभवनामक द्वितीय प्रकरणमें २५ श्लोक हैं । आक्षेपोपदेशनामक तृतीय प्रकरणमें १४ श्लोक हैं ॥ १ ॥

षडुल्लासे लये चैवोपदेशे च चतुश्चतुः।
पञ्चकं स्यादनुभवे बन्धमोक्षे चतुष्क-
कम् ॥ २ ॥

अन्वयः-(चतुर्थे) उल्लासे षट् । लये च उपदेशे च एवं चतुश्चतुः । अनुभवे पञ्चकम् । वन्धमोक्षे चतुष्ककं स्यात् ॥ २ ॥

शिष्यानुभवनामक चतुर्थ प्रकरणमें ६ श्लोक हैं। लयनामक पंचम प्रकरणमें ४ श्लोक हैं । गुरूपदेशनामक षष्ठ प्रकरणमेंभी ४ श्लोक हैं । शिष्यानुभवनामक सप्तम प्रकरणमें ५ श्लोक है । बंधमोक्षनामक अष्टम प्रकरणमें ४ श्लोक हैं ॥ २ ॥

निर्वेदोपशमे ज्ञाने एवमेवाष्टकं भवेत् । यथासुखसप्तकं च शांतौ स्याद्वेदसं-मितम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—निर्वेदोपशमे एवं एव ज्ञाने अष्टकम् भवेत् । यथासुखे च सप्तकम् । शान्तौ च वेदसंमितं स्यात् ॥ ३ ॥

निर्वेदनामक नवम प्रकरणमें ८ श्लोक हैं । उप-शमनामक दशम प्रकरणमें ८ श्लोक हैं । ज्ञानाष्टक-नामक एकादश प्रकरणमें ८ श्लोक हैं । एवमेवाष्टक नामक द्वादश प्रकरणमें ८ श्लोक हैं । यथासुखनामक त्रयोदशप्रकरणमें ७ श्लोक हैं । शांतिचतुष्कनामक चतुर्दश प्रकरणमें ४ श्लोक हैं ॥ ३ ॥

तत्त्वोपदेशे विंशच्च दश ज्ञानोपदे-शके । तत्त्वरूपे च विंशच्च शमे च शतकं भवेत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—तत्त्वोपदेशे विंशत् । ज्ञानोपदेशके च दश । तत्त्वस्वरूपके च विंशत् । शमें च शतकम् भवेत् ॥ ४ ॥

तत्त्वोपदेशनामक पंचदशप्रकरणमें २० श्लोक हैं। ज्ञानोपदेशनामक षोडश प्रकरणमें १० श्लोक हैं। तत्त्वस्वरूपनामक सप्तदश प्रकरणमें २० श्लोक हैं। शमनामक अष्टादशप्रकरणमें १०० श्लोक हैं ॥ ४ ॥

अष्टकं चात्मविश्रान्तौ जीवन्मु-
क्तौ चतुर्दश । षट् संख्याक्रमवि-
ज्ञाने ग्रन्थैकात्म्यं ततः परम् ॥ ५ ॥
विंशत्येकमितैःखण्डैःश्लोकैरात्मा-
ग्निमध्यगैः । अवधूतानुभूतेश्च
श्लोकाः संख्याक्रमा अमी ॥ ६ ॥

अन्वयः–आत्मविश्रान्तौ च अष्टकम् । जीवन्मुक्तौ चतुर्दश । संख्याक्रमविज्ञाने षट् । ततः परम् आत्माग्निमध्यगैः श्लोकैः विंशत्येकमितैः खण्डैः ग्रन्थैकात्म्यम् (भवति) । अमी श्लोकाः अवधूतानुभूतेः संख्याक्रमाः (कथिताः) ॥ ५ ॥ ६ ॥

आत्मविश्रान्तिनामक उन्नीसवें प्रकरणमें ८ श्लोक हैं। जीवन्मुक्तिनामक विंशतिक प्रकरणमें १४ श्लोक हैं। और संख्याक्रमविज्ञाननामक एकविंशतिक

प्रकरणमें ९ श्लोक हैं और संपूर्णग्रंथमें इक्कीस प्रकरण और ३०२ श्लोक हैं । इस प्रकार अवधूतका अनुभवरूप जो " अष्टावक्रगीता " है उसके श्लोकोंकी संख्याका क्रम कहा । यद्यपि अंतके श्लोककरके सहित ३०३ श्लोक हैं परंतु दशमपुरुषकी समान यह श्लोक अपनेको ग्रहण कर अन्य श्लोकोंकी गणना करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

इति श्रीमदष्टावक्रमुनिविरचितायां ब्रह्मविद्यायां सान्वयभाषाटीकया सहितं संख्याक्रमव्याख्यानं नामैकविंशतिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २१ ॥

इति सान्वयभाषाटीकासमेता अष्टावक्रगीता समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.